ओ३म् ।

पुस्तकों पर सर्वप्रकार की निशानियां लगाना अनुचित है ।

कोई विद्यार्थी पन्द्रह दिन से अधिक पुस्तक नहीं रख सकता ।

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित ३० वे दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

ओ३म्

संस्कृतप्रबोधः

तत्रायं

तृतीयोभागः

बदरीदत्त शर्मणा

संस्कृत-भाषा-व्युत्पित्सूनाम्

उपकाराय

प्राकृतभाषया विनिर्मितः

THE SANSKRIT PRABODHA

OR

A SANSKRIT GRAMMAR

PART III.

BY

P. BADARI DUTT SHARMA
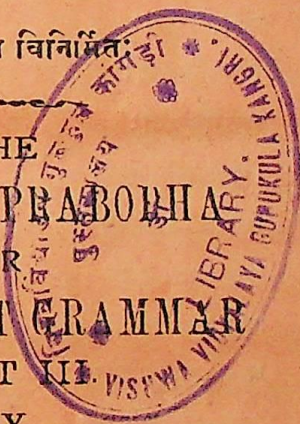
PRINTED AT THE LAW PRESS, CAWNPORE.

प्रथमावृत्तौ १०००] १९०७ [मूल्यम् ।)

विषयानुक्रमः

संस्कृत प्रबोधे

तृतीयोभागः

क्रिया

क्रिया उसको कहते हैं, जिससे कुछ करना पाया जाय और वह काल, पुरुष और वचन से सम्बन्ध रखती है।

क्रिया के मूल को 'धातु' कहते हैं, धातु के अर्थ से किसी व्यापार का बोध होता है। जैसे—'भू' से होना, 'कृ' से करना और 'गम्' से जाना। इत्यादि

क्रिया दो प्रकार की होती है एक सकर्मक दूसरी अकर्मक॥

सकर्मक क्रिया वह है, जो कर्म के साथ रहे अर्थात् उसका फल कर्त्ता में न जाने पावे किन्तु कर्म ही में रहे। यथा—शिष्येण पुस्तकं पठ्यते=शिष्य से पुस्तक पढ़ाजाता है। कविना काव्यं रच्यते=कवि से काव्य रचाजाता है। इन उदाहरणों में 'पढ़ना' और 'रचना' जो क्रिया का फल है, वह पुस्तक और काव्य कर्म में है, न कि शिष्य और कवि कर्त्ता में, इसलिये ऐसी क्रिया को सकर्मक कहते हैं*।

अकर्मक क्रिया वह है, जिसके साथ कर्म नहीं रहता, किन्तु क्रिया का फल कर्त्ता या भाव में जाता है। यथा—देवदत्त आस्ते=देवदत्त बैठता है। यज्ञदत्तेन शय्यते=यज्ञदत्त से

* सकर्मक क्रियाओं में बहुतसी ऐसी भी क्रियायें हैं कि जिनके दो कर्म होते हैं। यथा—अजां ग्रामं नयति=बकरी को गांव में लेजाता है। शिष्यं धर्मं शास्ति=शिष्य को धर्म की शिक्षा करता है। इन उदाहरणों में 'नयति' और 'शास्ति' क्रियाओं के क्रमशः अजा और ग्राम तथा शिष्य और धर्म ये दो २ कर्म हैं, इस लिये ऐसी क्रियाओं को द्विकर्मक कहते हैं॥

सोया जाता है । इन उदाहरणों में बैठना और सोना रूप क्रिया का फल क्रमशः कर्त्ता और भाव में जाता है, अतएव ऐसी क्रिया अकर्मक कहलाती हैं ॥

सकर्मक क्रिया के भी दो भेद हैं, एक कर्तृवाच्य और दूसरी कर्मवाच्य । जिस क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता के साथ हो, वह कर्तृवाच्य और जिसका सम्बन्ध कर्म के साथ हो वह कर्मवाच्य कहलाती है* ॥

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
शिष्यः विद्यां पठति	शिष्येण विद्या पठ्यते
शिष्य विद्या को पढ़ता है ।	शिष्य से विद्या पढ़ीजाती है।
कृषकः गोधूमान् वपति	कृषकेण गोधूमा उप्यन्ते
किसान गेहुओं को बोता है।	किसान से गेहूँ बोये जाते हैं।
वदान्यः धनं ददाति	वदान्येन धनं दीयते ।
उदार धन देता है	उदार से धन दियाजाता है।

सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्त्ता अर्थ में और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में वक्ष्यमाण दश लकार और उनके स्थान में 'ति' आदि प्रत्यय होकर क्रिया बनती है ॥

सकर्मक से कर्म में—गम्यते ग्रामो देवदत्तेन=देवदत्त से गांव जायाजाता है ।

सकर्मक से कर्त्ता में—गच्छति ग्रामं देवदत्तः=देवदत्त गांव को जाता है ।

अकर्मक से भाव में—आस्यते देवदत्तेन=देवदत्त से बैठाजाता है ।

---

* यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कर्तृवाच्य क्रिया के साथ कर्त्ता में सदा प्रथमा विभक्ति और कर्म में द्वितीया विभक्ति रहती है, परन्तु कर्मवाच्य क्रिया के साथ कर्त्ता में सदा तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है ॥

अकर्मक से कर्त्ता में—आस्ते देवदत्तः = देवदत्त बैठता है।

क्रिया के करने में जो समय लगता है, उसे काल कहते हैं, उसके मुख्य भाग ३ हैं—वर्त्तमान, भूत और भविष्य॥

जिस क्रिया का आरम्भ होचुका हो, पर समाप्ति न हुई हो, उसे वर्त्तमान कहते हैं और इस अर्थ में धातु से 'लट्' लकार होता है। जैसे—पर्णं पतति = पत्ता गिरता है। अश्वो धावति = घोड़ा दौड़ता है॥

जिस क्रिया की समाप्ति होचुकी हो, उसे भूतकाल कहते हैं और इसके ३ भेद हैं—(१) परोक्ष भूत (२) अनद्यतन भूत (३) सामान्य भूत। जो अपनी आंखों के सामने न हुवा हो किन्तु श्रुतिपरम्परा से सुना जाता हो, उसे परोक्षभूत कहते हैं और इस अर्थ में धातु से सदा लिट् लकार होता है। जैसे—पुरा कश्चिद्रामो दाशरथिर्बभूव = पहिले कोई दशरथ का पुत्र राम हुवा था। अद्यतन आज को कहते हैं, जो आज न हुवा हो किन्तु आज से पहिले पर समीप काल में हुवा हो, उसे अनद्यतन भूत कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लङ् लकार होता है। जैसे—ह्यस्तत्रागच्छम् = कल मैं वहां गया था। जो सामान्य प्रकार से होचुका हो चाहे वह अद्यतन हो वा अनद्यतन उसे सामान्य भूत कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लुङ् लकार होता है। यथा—मत्तः पुरा तेऽभूवन् = मुझ से पहिले वे हुवे थे* ॥

भविष्य काल के दो भेद हैं एक अनद्यतन भविष्य दूसरा सामान्य भविष्य। आज से पीछे पर समीप काल में जो होगा वह अनद्यतन भविष्य कहलाता है और इस अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है। यथा—परेद्युस्तत्र गन्तास्मि = मैं परसों

* अनद्यतन भूत को आसन्न भूत और सामान्य भूत को पूर्ण भूत भी कहते हैं॥

वहां जाऊँगा। जो सामान्य प्रकार से आगे होनेवाला है, उसे सामान्य भविष्य कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है। यथा—किन्तत्र त्वं गमिष्यसि=क्या वहां पर तू जायगा* ॥

इन तीन कालों के अतिरिक्त विधि, आशीर्वाद और हेतु हेतुमद्भाव अर्थों में भी धातु से लकार होते हैं। विधि आज्ञा वा प्रेरणा को कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लोट् तथा लिङ् लकार होते हैं। यथा—स तत्र गच्छतु गच्छेत् वा=वह वहां जावै। आशीर्वाद अर्थ में आशीर्लिङ् होता है। यथा—स्वस्ति ते भूयात्=तेरे लिये सुख हो। कारण को हेतु और कार्य को हेतुमान् कहते हैं, ये दोनों जहां साथ २ रहें, उसको हेतुहेतुमद्भाव कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लृङ् लकार होता है। यथा—यदा सुवृष्टिरभविष्यत्तदा सुभिक्षमप्यभविष्यत्=जब सुवृष्टि होगी तब सुभिक्ष भी होगा ॥

उक्त तीनों काल और विध्यादि अर्थों से सम्बन्ध रखने वाले सब दश लकार हैं, जिनका निर्देश इस प्रकार किया गया है—लट्, लिट्, लङ्, लुङ्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लिङ् और लृङ्। इनमें से सातवां लेट् लकार केवल वैदिक साहित्य से सम्बन्ध रखता है और उसके अनेक भेद हैं, इस लिये हम उसको यहां न रखकर पाचवें भाग में (जो केवल वैदिक व्याकरण के विषय में होगा) रक्खेंगे। लिङ् लकार के दो भेद हैं एक विधि लिङ् और दूसरा आशीर्लिङ् ॥

उक्त दश लकारों में लट्, लङ्, लोट् और विधि लिङ् ये चार सार्वधातुक और शेष ६ आर्धधातुक कहलाते हैं ॥

---

* अनद्यतन भविष्य को आसन्न भविष्य और सामान्य भविष्य को पूर्ण भविष्य भी कहते हैं ॥

उक्त लकारों के स्थान में निम्न लिखित १८ प्रत्यय होते हैं :—

परस्मैपद

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	तिप्	सिप्	मिप्
द्विवचन	तस्	थस्	वस्
बहुवचन	झि	थ	मस्

आत्मनेपद

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	त	थास्	इट्
द्विवचन	आताम्	आथाम्	वहि
बहुवचन	झ	ध्वम्	महिङ्

अब दशों लकारों में जिन २ रूपों से उक्त प्रत्यय धातु के साथ मिलते हैं उनको दिखलाते हैं :—

लट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
वचन	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०
एकव०	ति	सि	मि	ते	से	ए
द्विव०	तः	थः	वः	आते	आथे	वहे
बहुव०	अन्ति	थ	मः	अन्ते	ध्वे	महे

लिट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	अ	थ	अ	ए	से	ए
द्विव०	अतुः	अथुः	व	आते	आथे	वहे
बहुव०	उः	अ	म	इरे	ध्वे	महे

लङ् व लुङ्*

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
वचन	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०
एकव०	त्	:	अम्	त	थाः	इ
द्विव०	ताम्	तम्	व	आताम्	आथाम्	वहि
बहुव०	अन्-उः	त	म	अन्त	ध्वम्	महि

लुट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	ता	तासि	तास्मि	ता	तासे	ताहे
द्विव०	तारौ	तास्थः	तास्वः	तारौ	तासाथे	तास्वहे
बहुव०	तारः	तास्थ	तास्मः	तारः	ताध्वे	तास्महे

लृट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	स्यति	स्यसि	स्यामि	स्यते	स्यसे	स्ये
द्विव०	स्यतः	स्यथः	स्यावः	स्येते	स्येथे	स्यावहे
बहुव०	स्यन्ति	स्यथ	स्यामः	स्यन्ते	स्यध्वे	स्यामहे

लोट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	तु-तात्	हि-तात्	आनि	ताम्	स्व	ऐ
द्विव०	ताम्	तम्	आव	आताम्	आथाम्	आवहै
बहुव०	अन्तु	त	आम	अन्ताम्	ध्वम्	आमहै

---

* लुङ् लकार में प्रत्यय से पूर्व किन्हीं धातुओं से सिच्, किन्हीं से क्स, किन्हीं से चङ् और किन्हीं से अङ् प्रत्यय और होते हैं ॥

विधिलिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
वचन	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०
एकव०	यात्	याः	याम्	ईत	ईथाः	ईय
द्विव०	याताम्	यातम्	याव	ईयाताम्	ईयाथाम्	ईवहि
बहुव०	युः	यात	याम	ईरन्	ईध्वम्	ईमहि

आशीर्लिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	यात्	याः	यासम्	सीष्ट	सीष्ठाः	सीय
द्विव०	यास्ताम्	यास्तम्	यास्व	सीयास्ताम्	सीयास्थाम्	सीवहि
बहुव०	यासुः	यास्त	यास्म	सीरन्	सीध्वम्	सीमहि

लृङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	स्यत्	स्यः	स्याम्	स्यत	स्यथाः	स्ये
द्विव०	स्यताम्	स्यतम्	स्याव	स्येताम्	स्येथाम्	स्यावहि
बहुव०	स्यन्	स्यत	स्याम	स्यन्त	स्यध्वम्	स्यामहि

उक्त १८ प्रत्ययों में पहिले ९ परस्मैपद और पिछले ९ आत्मनेपद कहलाते हैं॥

परस्मैपद का प्रयोग केवल कर्तृवाच्य क्रिया में ही होता है, कर्मवाच्य और भाववाच्य में नहीं। जैसे—देवदत्तः गच्छति = देवदत्त जाता है। परन्तु आत्मनेपद का प्रयोग तीनों प्रकार की क्रियाओं में होता है। कर्तृवाच्य में—देवदत्त आस्ते = देवदत्त बैठता है। कर्मवाच्य में—यज्ञदत्तेन भोजनं क्रियते = यज्ञदत्त से भोजन किया जाता है। भाववाच्य में—सोमदत्तेन शय्यते = सोमदत्त से सोया जाता है॥

परस्मैपद और आत्मनेपद के तीन २ वचन क्रम से प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष कहलाते हैं। जैसे—परस्मैपद के तिप्, तस्, झि, प्रथम पुरुष। सिप्, थस्, थ, मध्यम पुरुष, मिप्, वस्, मस् उत्तम पुरुष। ऐसेही आत्मनेपद के त, आताम्, झ प्रथम पुरुष। थास्, आथाम्, ध्वम् मध्यम पुरुष और इट्, वहि, महि उत्तम पुरुष ॥

प्रत्येक पुरुष के तीन २ वचन क्रम से एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक होते हैं। जैसे—तिप्, एकवचन, तस् द्विवचन और झि बहुवचन। इसीप्रकार सिप् आदि में भी समझना चाहिये ॥

जिस क्रिया का कर्त्ता अस्मद् शब्द वाच्य हो, वह उत्तम पुरुष कहलाती है। जैसे—अहं पचामि = मैं पकाताहूँ। तथा जिस क्रिया का कर्त्ता युष्मद् शब्द वाच्य हो, वह मध्यम पुरुष कहलाती है। यथा—त्वं पचसि = तू पकाता है और जिस क्रिया का कर्त्ता इन दोनों से भिन्न कोई तीसरा हो, उसे प्रथम वा अन्य पुरुष कहते हैं। जैसे—सः पचति = वह पकाता है। यः पचति = जो पकाता है। कः पचति = कौन पकाता है। इत्यादि

सब धातुओं के तीन भेद हैं, सेट्, अनिट् और वेट्। जिन धातुओं को वलादि आर्धधातुक की आदि में इट् का आगम होता है वे सेट्, जिनको नहीं होता वे अनिट् और जिनको विकल्प से होता है वे वेट् कहलाते हैं ॥

क्रिया के निरूपण में दश गण और दश प्रक्रिया हैं, जिनकी सिद्धि के लिये धातुपाठ में २००० के लगभग धातुओं का निर्देश किया गया है। हम संक्षेप के लिये उनमें से कतिपय प्रसिद्ध और प्रचलित धातुओं के गणशः रूप दिखाते हैं :—

———

अथ भ्वादिगणः

भू = होना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

वर्त्तमान = लट्*

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भवति	भवसि	भवामि
द्विवचन	भवतः	भवथः	भवावः
बहुवचन	भवन्ति	भवथ	भवामः
	परोक्षभूत = लिट्†		
एकवचन	बभूव	बभूविथ	बभूव
द्विवचन	बभूवतुः	बभूवथुः	बभूविव
बहुवचन	बभूवुः	बभूव	बभूविम
	अनद्यतनभूत = लङ्*‡		
एकवचन	अभवत्	अभवः	अभवम्
द्विवचन	अभवताम्	अभवतम्	अभवाव
बहुवचन	अभवन्	अभवत	अभवाम
	सामान्यभूत = लुङ्‡		
एकवचन	अभूत्	अभूः	अभूवम्
द्विवचन	अभूताम्	अभूतम्	अभूव
बहुवचन	अभूवन्	अभूत	अभूम
	अनद्यतन भविष्य = लुट्		
एकवचन	भविता	भवितासि	भवितास्मि
द्विवचन	भवितारौ	भवितास्थः	भवितास्वः
बहुवचन	भवितारः	भवितास्थ	भवितास्मः

---

* सार्वधातुक लकारों में भ्वादिगण के समस्त धातुओं को तिङ् प्रत्यय से पूर्व 'शप्' प्रत्यय और होता है, श् और प् का लोप होकर केवल 'अ' रह जाता है ॥

† लिट् लकार में धातु को द्विर्वचन होजाता है, जिसमें प्रथम की अभ्यास संज्ञा है ॥

‡ लङ्, लुङ् और लृङ् इन तीन लकारों में हलादि धातु के पहिले 'अ' और बढ़जाता है ॥

सामान्य भविष्य = लृट्

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भविष्यति	भविष्यसि	भविष्यामि
द्विवचन	भविष्यतः	भविष्यथः	भविष्यावः
बहुवचन	भविष्यन्ति	भविष्यथ	भविष्यामः

विधि = लोट् *

एकवचन	भवतु, भवतात्	भव, भवतात्	भवानि
द्विवचन	भवताम्	भवतम्	भवाव
बहुवचन	भवन्तु	भवत	भवाम

विधि = लिङ् *

एकवचन	भवेत्	भवेः	भवेयम्
द्विवचन	भवेताम्	भवेतम्	भवेव
बहुवचन	भवेयुः	भवेत	भवेम

आशीः = लिङ्

एकवचन	भूयात्	भूयाः	भूयासम्
द्विवचन	भूयास्ताम्	भूयास्तम्	भूयास्व
बहुवचन	भूयासुः	भूयास्त	भूयास्म

हेतुहेतुमद्भाव = लृङ् ‡

एकवचन	अभविष्यत्	अभविष्यः	अभविष्यम्
द्विवचन	अभविष्यताम्	अभविष्यतम्	अभविष्याव
बहुवचन	अभविष्यन्	अभविष्यत	अभविष्याम

" उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते " उपसर्गों के योग से धातुओं के अर्थ बदलजाते हैं अतएव इसी 'भू' धातु का 'प्र' उपसर्ग के योग में सामर्थ्य (सकना) अर्थ होजाता है— दाने प्रभवति = देने में समर्थ होता है । इसी प्रकार 'सम्' उपसर्ग के योग में सम्भव होना अर्थ होजाता है—यत्ने सिद्धिः सम्भवति = यत्न होने पर सिद्धि का होना सम्भव है ।

'उत्' के योग में उत्पन्न होना अर्थ होजाता है—क्षेत्रे वीजमुद्भवति = खेत में वीज उत्पन्न होता है 'अभि' पूर्वक 'भू' धातु का अर्थ दबाना, 'परि' पूर्वक तिरस्कार करना और 'अनु' पूर्वक अनुभव करना होजाता है और इन तीनों के योग में 'भू' धातु सकर्मक भी होजाता है । यथा—सूर्यः चन्द्रमभिभवति = सूर्य चन्द्र को दबा लेता है । खलः साधुं परिभवति = दुष्ट साधु का अनादर करता है । विद्यया सुखमनुभवति = विद्या से सुख का अनुभव करता है ॥

एध् = बढ़ना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

लट्—एधते, एधेते, एधन्ते । एधसे, एधेथे, एधध्वे । एधे, एधावहे, एधामहे ॥

* लिट्—एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते, एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे, एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । इत्यादि

† लङ्—ऐधत, ऐधेताम्, ऐधन्त । ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम् । ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि ॥

† लुङ्—ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिषत । ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिध्वम् । ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि ॥

लुट्—एधिता, एधितारौ, एधितारः । एधितासे, एधितासाथे, एधिताध्वे । एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे ॥

लृट्—एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते । एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे । एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे ॥

लोट्—एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम् । एधथाः, एधेथाम्, एधध्वम् । एधै, एधावहै, एधामहै ।

---

* अकारादि और ऋच्छ धातु को छोड़कर शेष सब अजादि धातुओं से लिट् लकार में आम् प्रत्यय होकर उसके आगे कृ, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है। जैसे—एधाञ्चक्रे । एधाम्बभूव । एधामास ॥

† लङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में अजादि धातुओं के पहिले 'आ' और बढ़जाता है ॥

विधिलिङ्—एधेत, एधेयाताम्, एधेरन् । एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम् । एधेय, एधेवहि, एधेमहि ॥

आशीर्लिङ्—एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम् । एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि ॥

† लृङ्—ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि ॥

पच् = पकाना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

लट्—प०—पचति । पचसि । पचामि ॥ आ०—पचते । पचसे । पचे । इत्यादि ॥

* लिट्—प०—पपाच, पेचतुः, पेचुः । पेचिथ-पपक्थ, पेचथुः, पेच । पपाच-पपच, पेचिव, पेचिम ॥

,, आ०—पेचे, पेचाते, पेचिरे । पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे । पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे ॥

लङ्—प०—अपचत् । अपचः । अपचम् ॥ आ०—अपचत । अपचथाः । अपचे ॥

‡ लुङ्—प०—अपाक्षीत् । अपाक्षीः । अपाक्षम् ॥ आ०—अपक्त । अपक्थाः । अपक्षि ॥

लुट्—प०—पक्ता । पक्तासि । पक्तास्मि ॥ आ०—पक्ता । पक्तासे । पक्ताहे ॥

---

* जिस धातु के अभ्यास को कोई आदेश न हुवा हो उसको लिट् लकार के परस्मैपद में प्रथम और उत्तमपुरुष के एकवचन को छोड़कर शेष सब पुरुषों के सब वचनों में 'ए' आदेश और अभ्यास का लोप होजाता है । यथा—पेचतुः । पेचुः । इत्यादि । आत्मनेपद में सर्वत्र होताहै ॥

‡ लुङ् लकार में 'पच्' धातु को 'सिच्' होकर परस्मैपद में वृद्धि होजाती है—अपाक्षीत् ॥

लृट्—प०—पक्ष्यति। पक्ष्यसि। पक्ष्यामि॥ आ०—पक्ष्यते। पक्ष्यसे। पक्ष्ये॥

लोट्—प०—पचतु-पचतात्। पच-पचतात्। पचानि॥ आ०—पचताम्। पचस्व। पचै॥

विधिलिङ्—प०—पचेत्। पचेः। पचेयम्॥ आ०- पचेत। पचेथाः। पचेय॥

आशीर्लिङ्—प०—पच्यात्। पच्याः। पच्यासम्॥ आ०—पक्षीष्ट। पक्षीष्ठाः। पक्षीय॥

लृङ्—प०—अपक्ष्यत्। अपक्ष्यः। अपक्ष्यम्॥ आ०—अपक्ष्यत। अपक्ष्यथाः। अपक्ष्ये॥

ईक्ष = देखना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

लट्—ईक्षते॥ लिट्—ईक्षाञ्चक्रे-ईक्षाम्बभूव-ईक्षामास॥ लङ्—ऐक्षत॥ लुङ्—ऐक्षिष्ट॥ लुट्—ईक्षिता॥ लृट्—ईक्षिष्यते॥ लोट्—ईक्षताम्॥ विधिलिङ्—ईक्षेत॥ आशीर्लिङ्—ईक्षिषीष्ट॥ लृङ्—ऐक्षिष्यत॥

'प्र' उपसर्ग के योग में 'ईक्ष' धातु का अर्थ प्रेक्षा = जानना, 'प्रति' के योग में प्रतीक्षा = उत्सुकता से चाहना, 'अप' के योग में अपेक्षा = आवश्यकता, 'परि' के योग में परीक्षा = निर्णय करना, 'सम्' के योग में समीक्षा = विवेचन करना और 'उप' के योग में उपेक्षा = उदासीनता होजाता है, इनमें से केवल 'उप' के योग में यह धातु अकर्मक और सब में सकर्मक रहता है। यथा—बुद्धिमान् कार्याकार्यं प्रेक्षते = बुद्धिमान् कार्याकार्य को जानता है। विद्यालये छात्रा अध्यापकं प्रतीक्षन्ते = स्कूल में विद्यार्थी अध्यापक की प्रतीक्षा करते हैं। जनः स्वार्थमपेक्षते = मनुष्य स्वार्थ को चाहता है।

वैद्य औषधं परीक्षते = वैद्य औषध की परीक्षा करता है । विद्वानेव ग्रन्थस्य सारासारं समीक्षते = विद्वान् ही ग्रन्थ के सारासार की समालोचना करता है । दुर्गुणेषूपेक्षन्ते सज्जनाः = सज्जन दुर्गुणों में उदासीनता वर्त्तते हैं ॥

वदि = नमना वा सराहना, आत्मनेपदी, सकर्मक सेट्*

लट्—वन्दते ॥ लिट्—ववन्दे ॥ लङ्—अवन्दत ॥ लुङ्—अवन्दिष्ट ॥ लुट्—वन्दिता ॥ लृट्—वन्दिष्यते ॥ लोट्—वन्दताम् ॥ विधिलिङ्—वन्देत ॥ आशीर्लिङ्—वन्दिषीष्ट ॥ लृङ्—अवन्दिष्यत ॥

तप् = तपाना = सताना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

तपति ॥ ततप, तेपतु, तेपुः ॥ अतपत् ॥ अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः ॥ तप्ता ॥ तप्स्यति ॥ तपतु—तपतात् ॥ तपेत् ॥ तप्यात् ॥ अतप्स्यत् ॥

पत् = गिरना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

पतति ॥ पपात, पेततुः, पेतुः ॥ अपतत् ॥ अपप्तत्, अपप्तताम्, अपप्तन् † ॥ पतिता ॥ पतिष्यति ॥ पततु—पततात् ॥ पतेत् ॥ पत्यात् ॥ अपतिष्यत् ॥

'उत्' उपसर्ग के योग में 'पत्' धातु का अर्थ ऊपर को जाना होजाता है—आकाश उत्पतति पतंगः = आकाश में पक्षी ऊपर को जाता है । प्र–नि के योग में नमस्कार और 'अनु' के

---

* वदि धातु इकारान्त है, इकारान्त सब धातुओं की 'इ' को 'न्' होजाता है ॥

† लुङ् लकार में 'पत्' धातु को अङ् होकर उसके पहिले 'पुक्' का आगम होजाता है ॥

योग में पीछे जाना अर्थ होजाता है और इन दोनों अर्थों में 'पत्' धातु सकर्मक भी होजाता है—पितरं शिरसा प्रणिपतति = पिता को शिर से प्रणाम करता है। स्वामिनमनुपतति भृत्यः = भृत्य स्वामी के पीछे जाता है॥

क्रम् = चलना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

क्राम्यति—क्रामति* ॥ चक्राम, चक्रमतुः, चक्रमुः ॥ अक्राम्यत्—अक्रामत्* ॥ अक्रमीत्। अक्रमीः। अक्रमिषम् ॥ क्रमिता ॥ क्रमिष्यति ॥ क्राम्यतु—क्रामतु* ॥ क्राम्येत्—क्रामेत्* ॥ क्रम्यात् ॥ अक्रमिष्यत् ॥

'आ' उपसर्ग के योग में 'क्रम्' धातु का अर्थ आक्रमण करना और 'अति' के योग में अतिक्रमण करना होजाता है—शत्रुमाक्रामति = शत्रु पर आक्रमण करता है। धर्ममतिक्रामति, अतिक्रमते वा = धर्म का अतिक्रमण करता है। 'सम्' के योग में साथ चलना और 'नि' के योग में निकलना अर्थ होता है और इन दोनों अर्थों में यह धातु अकर्मक भी होजाता है—मित्रैः संक्रामति = मित्रों के साथ चलता है। गृहान्निष्क्रामति = घर से निकलता है। 'परा' के योग में पराक्रम करना और 'प्र' तथा 'उप' के योग में आरम्भ करना तथा उत्साह करना अर्थ होजाते हैं और इनके योग में यह अकर्मक तथा आत्मनेपदी भी होजाता है—युद्धे शूराः पराक्रमन्ते = युद्ध में शूर पराक्रम दिखाते हैं। ग्रन्थस्य प्रक्रमते उपक्रमते वा = ग्रन्थ का आरम्भ करता है। अध्ययनाय प्रक्रमते उपक्रमते वा = पढ़ने के लिये उत्साह करता है॥

---

* 'क्रम्' धातु को सार्वधातुक लकारों में विकल्प से 'श्यन्' प्रत्यय होकर क्राम्यति और क्रामति ये दो २ रूप सिद्ध होते हैं॥

गम् = जाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

गच्छति † ॥ जगाम, जग्मतुः । जग्मुः ‡ । जगमिथ-जगन्थ ॥ अगच्छत् † ॥ अगमत् § ॥ गन्ता ॥ गमिष्यति ¶ ॥ गच्छतु † ॥ गच्छेत् † ॥ गम्यात् ॥ अगमिष्यत् ¶ ॥

'गम्' धातु का 'आ' उपसर्ग के योग में आना, 'अधि' के योग में पाना, 'सम्' के योग में संगति करना और 'अनु' के योग में पीछे जाना अर्थ होजाते हैं। 'अधि' और 'अनु' के योग में तो यह सकर्मकही रहता है, परन्तु 'आ' और 'सम्' के योगमें अकर्मक होजाता है—विद्यामधिगच्छति = विद्या को प्राप्त होता है। गुरुमनुगच्छति = गुरु के पीछे जाता है। ग्रामादागच्छति = ग्राम से आता है। सभायां संगच्छते = सभा में संगत होता है ॥

दृश् = देखना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पश्यति * । ददर्श । ददर्शिथ-दद्रष्ठ । ददर्श ॥ अपश्यत् * ॥ अदर्शत्-अद्राक्षीत् ॥ द्रष्टा ॥ द्रक्ष्यति ॥ पश्यतु * ॥ पश्येत् * ॥ दृश्यात् ॥ अद्रक्ष्यत् ॥

कृष् = खींचना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

कर्षति ॥ चकर्ष ॥ अकर्षत् ॥ अक्राक्षीत्-अकार्क्षीत् ॥ क्रष्टा-कर्ष्टा ॥ क्रक्ष्यति-कर्क्ष्यति ॥ कर्षतु ॥ कर्षेत् ॥ कृष्यात् ॥ अक्रक्ष्यत्-अकर्क्ष्यत् ॥

---

† 'गम्' धातु के मकार को सार्वधातुक लकारों में 'छ्' होकर 'गच्छति' इत्यादि रूप होते हैं ॥

‡ लिट् लकार में तीनों पुरुषों के एकवचन को छोड़कर शेष वचनों में उपधा के अकार का लोप होकर जग्मतुः । जग्मुः इत्यादि रूप होते हैं ॥

§ लुङ् में 'अङ्' होकर अगमत् इत्यादि रूप होते हैं ॥

¶ लृट् और लृङ् में इट् होकर गमिष्यति और अगमिष्यत् इत्यादि रूप होते हैं ॥

* दृश् धातु को सार्वधातुक लकारों में 'पश्य' आदेश होकर 'पश्यति' इत्यादि रूप होते हैं ॥

रुच्=चमकना और पसन्द होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

रोचते॥ रुरुचे॥ अरोचत॥ अरुचत्-अरोचिष्ट॥ रोचिता॥ रोचिष्यते॥ रोचताम्॥ रोचेत॥ रोचिषीष्ट॥ अरोचिष्यत॥

रुह् = उगना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

रोहति॥ रुरोह॥ अरोहत्॥ अरुक्षत्*॥ रोढा॥ रोक्ष्यति॥ रोहतु॥ रोहेत्॥ रुह्यात्॥ अरोक्ष्यत्॥

'आ' 'उपसर्ग के योग में 'रुह्' धातु का अर्थ चढ़ना और 'अव' के योग में उतरना होजाता है और 'आ' के योग में यह सकर्मक भी होजाता है—अट्टालिकामारोहति=अटारी पर चढ़ता है। पर्वतादवरोहति=पर्वत से उतरता है॥

वस् = वसना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

वसति॥ उवास। ऊषिथ। ऊषु†॥ अवसत्॥ अवात्सीत्। अवात्सीः। अवात्सम्॥ वस्ता॥ वत्स्यति॥ वसतु॥ वसेत्॥ उष्यात्†॥ अवत्स्यत्॥

'वस्' धातु का 'प्र' के योग में विदेश जाना और 'उप' के योग में भोजन न करना अर्थ होजाते हैं—वाणिज्यार्थं प्रवसति=वाणिज्य के लिये प्रवास करता है। अजीर्णे सत्युपवसति=अजीर्ण होने पर उपवास करता है। अनु, अधि और आ के योग में अर्थ तो वसनाही रहता है, पर धातु सकर्मक होजाता है—गृहमनुवसति, अधिवसति, आवसति वा=घर में रहता है॥

यत् = यत्न करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

यतते॥ येते॥ अयतत॥ अयतिष्ट॥ यतिता॥ यतिष्यते॥ यतताम्॥ यतेत॥ यतिषीष्ट॥ अयतिष्यत॥

---

* 'रुह्' धातु को लुङ् में 'क्स' होकर अरुक्षत् इत्यादि रूप होते हैं॥

† वस् धातु के 'व्' को लिट् और आशीर्लिङ् में 'उ' सम्प्रसारण होगया है॥

कम् = चाहना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट् *

कामयते॥ चकमे-कामयाञ्चक्रे॥ अकामयत॥ अचीकमत-अचकमत ॥ कामयिता-कमिता ॥ कामयिष्यते-कमिष्यते ॥ कामयताम् ॥ कामयेत ॥ कामयिषीष्ट-कमिषीष्ट ॥ अकामयिष्यत-अकमिष्यत ॥

त्रप् = लज्जा करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, वेट्

त्रपते ॥ त्रेपे ॥ अत्रपत ॥ अत्रपिष्ट-अत्रप्त ॥ त्रपिता-त्रप्ता ॥ त्रपिष्यते-त्रप्स्यते ॥ त्रपताम् ॥ त्रपेत ॥ त्रपिषीष्ट-त्रप्सीष्ट ॥ अत्रपिष्यत-अत्रप्स्यत ॥

भाष् = बोलना, आत्मनेपदी, द्विकर्मक, सेट्

भाषते ॥ बभाषे ॥ अभाषत ॥ अभाषिष्ट ॥ भाषिता ॥ भाषिष्यते ॥ भाषताम् ॥ भाषेत ॥ भाषिषीष्ट ॥ अभाषिष्यत ॥

'भाष्' धातु 'सम्' उपसर्ग पूर्वक संवाद में और 'वि' पूर्वक विकल्प में वर्त्तता है—सहाध्यायिनः परस्परं सम्भाषन्ते=सहाध्यायी आपस में संवाद करते हैं। विप्रतिपत्तौ विभाषन्ते=सन्देह में विकल्प करते हैं ॥

वृत् = वर्त्तना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट् †

वर्त्तते ॥ ववृते ॥ अवर्त्तत ॥ अवृतत्—अवर्त्तिष्ट ॥ वर्त्तिता ॥ वर्त्स्यति-वर्त्तिष्यते ॥ वर्त्तताम् ॥ वर्त्तेत ॥ वर्त्तिषीष्ट ॥ अवर्त्स्यत्-अवर्त्तिष्यत ॥

वृत् धातु का 'प्रति-आ' उपसर्ग के योग में लौटना और 'परि' के योग में बदलना अर्थ हो जाता है—ग्रामात्प्रत्यावर्त्तते=ग्राम से लौटता है। कालः परिवर्त्तते=समय बदलता है ॥

---

* 'कम्' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'अय्' प्रत्यय और वृद्धि होकर 'कामयते' इत्यादि रूप बनते हैं, आर्धधातुकों में विकल्प से 'अय्' प्रत्यय और वृद्धि होती है, इसलिये कामयिता और कमिता इत्यादि दो २ रूप होते हैं ॥

† वृत् धातु को लुङ्, लृट् और लृङ् इन तीन लकारों में परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों के प्रत्यय होते हैं, परन्तु परस्मैपद में इट् का आगम नहीं होता ॥

रम् = रमण करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, अनिट्

रमते ॥ रेमे ॥ अरमत ॥ अरंस्त ॥ रन्ता ॥ रंस्यते ॥ रमताम् ॥ रमेत ॥ रंसीष्ट ॥ अरंस्यत ॥

'रम्' धातु का अर्थ 'उप' के योग में निवृत्त होना और 'वि' के योग में विश्राम करना होजाता है और इन दोनों के योग में यह धातु उभयपदी होजाता है—कार्यादुपरमति, उपरमते वा = कार्य से निवृत्त होता है। श्रान्तः पान्थो विरमति विरमते वा = थका हुवा मुसाफिर विश्राम करता है ॥

लभ् = पाना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

लभते ॥ लेभे ॥ अलभत ॥ अलब्ध ॥ लब्धा ॥ लप्स्यते ॥ लभताम् ॥ लभेत ॥ लप्सीष्ट ॥ अलप्स्यत ॥

लभ् धातु का अर्थ 'आ' के योग में छूना और मारना तथा 'उप-आ' के योग में निन्दा करना होजाता है—पुत्रमालभते = पुत्र को स्पर्श करता है । पशुमालभते = पशु को मारता है । शत्रुमुपालभते = शत्रु की निन्दा करता है ॥

यज् = पूजना, मिलना, देना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्*

यजति । यजते ॥ इयाज । ईजे ॥ अयजत् । अयजत ॥ अयाक्षीत् । अयष्ट ॥ यष्टासि । यष्टासे ॥ यक्ष्यति । यक्ष्यते ॥ यजतु । यजताम् ॥ यजेत् । यजेत ॥ इज्यात् । यक्षीष्ट ॥ अयक्ष्यत् । अयक्ष्यत ॥

वप् = बोना, मूँडना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्*

वपति । वपते ॥ उवाप । ऊपे ॥ अवपत् । अवपत ॥ अवाप्सीत् । अवप्त ॥ वप्तासि । वप्तासे ॥ वप्स्यति । वप्स्यते ॥

---

* यज्, वप् और वह् धातु को लिट् और विधिलिङ् में सम्प्रसारण होता है । य, व, र, ल इन चार हलों के स्थान में क्रमशः इ, उ, ऋ, लृ इन चार अचों का होना सम्प्रसारण कहलाता है ॥

वपतु ॥ वपताम् ॥ वपेत् । वपेत ॥ उप्यात् । वप्सीष्ट ॥ अवप्स्यत् । अवप्स्यत ॥

वह् = लेजाना, ढोना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्*

वहति । वहते ॥ उवाह । ऊहे ॥ अवहत् । अवहत ॥ अवाक्षीत् । अवोढ़ ॥ इत्यादि वप् के समान ॥

'उद्' उपसर्ग पूर्वक वह् धातु का अर्थ विवाह करना होजाता है—भार्यामुद्वहति, उद्वहते वा = भार्या को व्याहता है ॥

पा = पीना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्†

पिबति ॥ पपौ, पपतुः, पपुः ॥ अपिबत् ॥ अपात् ॥ पाता ॥ पास्यति ॥ पिबतु ॥ पिबेत् ॥ पेयात् ॥ अपास्यत् ॥

स्था = ठहरना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्†

तिष्ठति ॥ तस्थौ ॥ अतिष्ठत् ॥ अस्थात् ॥ स्थाता ॥ स्थास्यति ॥ तिष्ठतु ॥ तिष्ठेत् ॥ स्थेयात् ॥ अस्थास्यत् ॥

'उद्' उपसर्ग के योग में 'स्था' धातु का अर्थ उठना और 'प्र' के योग में जाना होजाता है—आसनादुत्तिष्ठति = आसन से उठता है । गृहात्प्रतिष्ठते = घर से जाता है ॥

जि = जीतना, परस्मैपदी, द्विकर्मक, अनिट्‡

जयति ॥ जिगाय, जिग्यतुः, जिग्युः ॥ अजयत् ॥ अजैषीत् ॥ जेता ॥ जेष्यति ॥ जयतु ॥ जयेत् ॥ जीयात् ॥ अजेष्यत् ॥

'जि' धातु का 'वि' के योग में तौ जीतना ही अर्थ रहता है, परन्तु 'परा' के योग में हारना अर्थ होजाता है और इन दोनों के योग में यह आत्मनेपदी भी होजाता है—शत्रून् विजयते = शत्रुओं को जीतता है । साहसं पराजयते = हिम्मत को हारता है ॥

---

† 'पा' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'पिब' आदेश और 'स्था' को 'तिष्ठ' आदेश होजाता है ॥

‡ 'जि' धातु के जकार को सन् और लिट् परे हों तौ गकार आदेश होजाता है ॥

स्मि = आश्चर्य करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, अनिट्

स्मयते ॥ सिष्मिये ॥ अस्मयत ॥ अस्मयिष्ट ॥ स्मयिता ॥ स्मयिष्यते ॥ स्मयताम् ॥ स्मयेत ॥ स्मयिषीष्ट ॥ अस्मयिष्यत ॥

नी = पहुँचाना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

नयति । नयते ॥ निनाय । निन्ये ॥ अनयत् । अनयत ॥ अनैषीत् । अनेष्ट ॥ नेतासि । नेतासे ॥ नेष्यति । नेष्यते ॥ नयतु । नयताम् ॥ नयेत् । नयेत ॥ नीयात् । नेषीष्ट ॥ अनेष्यत् । अनेष्यत ॥

'नी' धातु के अर्थ 'प्र' के योग में बनाना, 'अप' के योग में मिटाना, 'उप' के योग में दीक्षा देना, 'उत्' के योग में ऊँचा होना, 'परि' के योग में विवाह करना, 'अभि' के योग में खेलना और अनु तथा वि के योग में नमना होजाते हैं— ग्रन्थं प्रणयति = ग्रन्थ को बनाता है । क्रोधमपनयति = क्रोध को मिटाता है । शिष्यमुपनयते = शिष्य को दीक्षा देता है । सदाचारेणात्मानमुन्नयति = सदाचार से अपने को उन्नत करता है । स्नातकः समावृत्तः सन् भार्यां परिणयति = स्नातक समावृत्त होकर भार्या को व्याहता है । नाटकमभिनयति = नाटक खेलता है । सुजनःविद्ययाऽत्मानमनुनयति, विनयते वा = सुजन विद्या से अपने को नम्र करता है ॥

श्रु = सुनना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

शृणोति* ॥ शुश्राव ॥ अशृणोत्* ॥ अश्रौषीत् ॥ श्रोता ॥ श्रोष्यति ॥ शृणोतु* ॥ शृणुयात्* ॥ श्रूयात् ॥ अश्रोष्यत् ॥

'श्रु' धातु का अर्थ प्रति, आ और सम् उपसर्गों के योग में अंगीकार करना होजाता है और 'सम्' के योग में यह धातु अकर्मक और आत्मनेपदी होजाता है—पितुरादेशं प्रतिशृणोति,

---

* 'श्रु' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'शृ' आदेश और 'नु' प्रत्यय होकर 'शृणोति' इत्यादि रूप बनते हैं ॥

ाश्टृणोति वा = पिता की आज्ञा को अंगीकार करता है।
ाचा संश्टृणुते = वाणी से अंगीकार करता है ॥

पू = शोधना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

पवते ॥ पुपुवे ॥ अपवत ॥ अपविष्ट ॥ पविता ॥ पविष्यते ॥ पवताम् ॥ पवेत ॥ पविषीष्ट ॥ अपविष्यत ॥

हृ = हरना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

हरति । हरते ॥ जहार । जह्रे ॥ अहरत् । अहरत ॥ अहार्षीत् । अहृत ॥ हर्त्तासि । हर्त्तासे ॥ हरिष्यति । हरिष्यते ॥ हरतु । हरताम् ॥ हरेत् । हरेत ॥ ह्रियात् । हृषीष्ट ॥ अहरिष्यत् । अहरिष्यत ॥

'हृ' धातु का अर्थ 'प्र' के योग में प्रहार करना, 'अप' के योग में दूर करना, 'सम्' के योग में संहार करना, 'वि' के योग में विहार करना, 'आ' के योग में आहार करना, 'उद्' के योग में उद्धार करना, 'उप-सम्' के योग में समाप्त करना, 'वि-आ' के योग में कहना और 'अभि-अव' के योग में खाना होजाता है और केवल 'वि' के योग में अकर्मक भी होजाता है—शत्रुं प्रहरति = शत्रु पर प्रहार करता है । मन्युमपहरति = क्रोध को दूर करता है । ईश्वरः सृष्टिं निर्माय पुनः संहरति = ईश्वर सृष्टि को बनाकर फिर संहार करता है। उद्याने विहरति = उद्यान में विहार करता है । भक्ष्यमाहरति = भक्ष्य को खाता है । विपन्नानुद्धरति = दुःखियों का उद्धार करता है । ग्रन्थमुपसंहरति = ग्रन्थ को समाप्त करता है। वाक्यं व्याहरति = वाक्य को कहता है । भोज्यमभ्यवहरति = भोज्य को खाता है ॥

ग्लै = मुरझाना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

ग्लायति ॥ जग्लौ ॥ अग्लायत् ॥ अग्लासीत् ॥ ग्लाता ॥ ग्लास्यति ॥ ग्लायतु ॥ ग्लायेत् ॥ ग्लायात् ॥ अग्लास्यत् ॥

प्राकृतभाषायां परिवर्त्तनीयानि

कुरुषु युधिष्ठिरो धर्मात्मा बभूव । अस्माकमग्रजाः धर्माचरणेनैधन्त । भुक्तमन्नं जाठराग्निःपचति । त्वं तत्र मां नेक्षथाः । समागमे सति गुरून् वन्देत । य इदानीं श्रेयोनाचरन्ति ते पुनस्तत्सारः । मदेनोद्धताः पुरुषा गर्त्ते पतिष्यन्ति । शिक्षितोऽश्वः सुष्ठु क्रंस्यति । पुरा व्यासादयो महर्षय उपदेशार्थं विविधान् देशान् जग्मुः । तत्राहं त्वा मद्राक्षम् । यदि कृषकाः श्रमेण क्षेत्रमकृक्ष्यन्तर्हि तस्मिन् बाहुल्येन बीजान्यरोक्ष्यन् । बालस्य पयः पानं रोचते । पुरा पठनार्थमहं वाराणस्यामवात्सम् । शुभे कर्मणि सततं यतेत । दमयन्ती स्वयंवरे नलं चकमे । धृष्टः धर्षितोऽपि न त्रपते । अहं पृष्टःसन् तत्राभाषिषं न त्वपृष्टः । आत्मवत् सर्वेषु भूतेषु वर्त्तताम् । किन्त्वं पुनरप्यश्रेयसि रंस्यसे ? श्रमेण विद्यामलप्स्यध्वं चेत्तर्हि धनं कीर्तिञ्चालप्स्यध्वम् । स्वर्गायाग्निष्टोमेन यज । यादृशं बीजमवप्स्यत तादृशं तस्य फलमवक्ष्यत । श्रीमतामाशीर्भिरहं सततं धर्मधुरमुह्याम् । सद्गुरुमधिगम्य शास्त्रामृतरसौघान् पास्यामः । यो गुरूणामादेशे तिष्ठति सएव कुशलाय कल्पते । यः सर्वेभ्यो बलवत्तरं शत्रुं क्रोधं जयेत् सएव शूरतमः । हीनांगं विपन्नं वा दृष्ट्वा कदापि मा स्मयताम् । त्वामहं तत्र नेष्यामि । हे शिष्य ! त्वं सदा गुरूणां हितवचनानि शृणुयाः । सदाचारेणात्मानं सर्वथा पवथाः । त्वमेव प्रपन्नस्यार्त्ति हर्त्तासि । अद्य यत्पुष्पितं पुष्पं श्वो ग्लास्यति तदेव ह ॥

संस्कृतभाषायां परिवर्त्तनीयानि

जो विद्या पढ़ेगा वह पण्डित होगा । अधर्म से कोई नहीं बढ़ता । वह हमारे लिये खाना पकावै । मैं वहां जाकर उसको देखूंगा । मैंने गुरू को प्रणाम किया था । सूर्य ग्रीष्म ऋतु में

तपता है। वृक्ष से फल गिरते हैं। वह मेरे साथ नहीं चलेगा। कल मैं वहां गया था। उसने मुझे देखा। किसान अपने खेत को जोतता है। कल्लर भूमि में अंकुर नहीं उगता। अधर्म से बढ़ने की रुचि मत करो। हम वहां जाकर बसेंगे। सत्पुरुष दूसरों की भलाई के लिये यत्न करते हैं। वह धन को चाहता है। बुरे काम से लजाओ। कठोर वचन किसी से न बोलो। जैसा जिसके साथ वर्त्तोगे वैसाही वह तुमसे वर्त्तेगा। वह सदा सत्कर्मों में ही रमण करता है। जो धर्म का पालन करेगा वह सुख पावेगा। मैं पौर्णमासी को यज्ञ करूँगा। पराये खेत में बीज कभी मत बोओ। गृहस्थ सब आश्रमों का भार उठाता है। मैंने कल केवल दूध पिया था। मैं कभी दुर्जनों के पास नहीं ठहरूँगा। श्रीकृष्णचन्द्र की सहायता से पाण्डवों ने कौरवों को जीता था। वह मुझको देखकर मुस्कुराया था। मैं उसको वहां लेगया था। कल सभा में हमने एक उत्तम व्याख्यान सुना था। अग्नि और वायु सब पदार्थों को पवित्र करते हैं। ओषधि रोग को हरती है। कमल शाम को मुरझाते हैं॥

इति भ्वादिगणः॥ १॥

---

(२) अदादिगणः

अद्=खाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

लट्—अत्ति, अत्तः, अदन्ति। अत्सि, अत्थः, अत्थ। अद्मि, अद्वः, अद्मः॥

लिट्—आद, आदतुः, आदुः॥ पक्षमें 'घस्' आदेश होकर जघास, जक्षतुः, जक्षुः *॥ इत्यादि

लङ्—आदत्, आत्ताम्, आदन्॥ लुङ्—अघसत्*॥ लुट्—अत्ता॥ लृट्—अत्स्यति॥ लोट्—अत्तु, अत्तात्॥

* लिट् में विकल्प से और लुङ् में नित्य 'अद्' धातु को 'घस्' आदेश होजाता है॥

विधिलिङ्—अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः ॥ आशीर्लिङ्—अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः ॥ लृङ्—आत्स्यत् ॥

अस् = होना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्*

लट्—अस्ति, स्तः, सन्ति। असि, स्थः, स्थ। अस्मि, स्वः, स्मः ॥

लङ्—आसीत्, आस्ताम्, आसन्। आसीः, आस्तम्, आस्त। आसम्, आस्व, आस्म ॥

लोट्—अस्तु-स्तात्, स्ताम्, सन्तु। एधि-स्तात्, स्तम्, स्त। असानि, असाव, असाम ॥

विधिलिङ्—स्यात्, स्याताम्, स्युः। स्याः, स्यातम्, स्यात। स्याम्, स्याव, स्याम ॥

विद् = जानना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

वेत्ति, वित्तः, विदन्ति। अथवा-वेद, विदतुः, विदुः† ॥ विवेद। विदाञ्चकार ॥ अवेत् ॥ अवेदीत् ॥ वेदिता ॥ वेदिष्यति ॥ वेत्तु। विद्धि। वेदानि ॥ विद्यात् ॥ विद्यात् ॥ अवेदिष्यत् ॥

'सम्' उपसर्गपूर्वक 'विद्' धातु आत्मनेपदी और अकर्मक होजाता है—विद्यया संवित्ते = विद्या से जानता है ॥

शास् = आज्ञा देना वा शिक्षा करना, परस्मैपदी, द्विकर्मक, सेट्

शास्ति, शिष्टः, शासति ॥ शशास ॥ अशात्, अशिष्टाम्, अशासुः ॥ अशिषत्‡ ॥ शासिता ॥ शासिष्यति ॥ शास्तु। शाधि। शासानि ॥ शिष्यात् ॥ शिष्यात् ॥ अशासिष्यत् ॥

---

* आर्धधातुक लकारों में 'अस्' धातु को 'भू' आदेश होकर 'भू' धातु के समान रूप होजाते हैं ॥

† 'विद्' धातु को लट् लकार में विकल्प से लिट् लकार के प्रत्यय भी होते हैं ॥

‡ 'शास्' धातु को लुङ् में अङ् और उपधा के आकार को इकार होजाता है अशिषत ॥

'आ' उपसर्ग के योग में 'शास्' धातु आत्मनेपदी और आशा करने के अर्थ में होजाता है—सज्जनाः सततं लोकहितमेवाशासते = सज्जन सदा लोक के हित को ही चाहते हैं ॥

हन् = मारना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट् *

हन्ति, हतः, घ्नन्ति । हंसि, हथः, हथ । हन्मि, हन्वः, हन्मः ॥ जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः * ॥ अहन्, अहताम्, अघ्नन् ॥ अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः * ॥ हन्ता ॥ हनिष्यति ॥ हन्तु । जहि । हनानि ॥ हन्यात् ॥ वध्यात् ॥ अहनिष्यत् ॥

'प्रति' उपसर्ग के योग में 'हन्' धातु का अर्थ प्रतिघात, 'अभि' और 'आ' के योग में आघात तथा 'वि–आ' के योग में व्याघात होजाता है—आहतःसन् शूरो रणे शत्रुं प्रतिहन्ति = मारा हुवा शूर युद्ध में शत्रु को पुनः मारता है । रणे शूराः शत्रूनभिघ्नन्ति, आघ्नन्ति वा = रण में शूर शत्रुओं को सब ओर से मारते हैं । मृषावादी स्वकथितमेव व्याहन्ति = झूंठ बोलनेवाला अपने कहे हुवे को ही मारता है ॥

आस् = बैठना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

आस्ते, आसाते, आसते ॥ आस्से । आसे ॥ आसाञ्चक्रे ॥ आसत ॥ आसिष्ट ॥ आसिता ॥ आसिष्यते ॥ आस्ताम् ॥ आसीत ॥ आसिषीष्ट ॥ आसिष्यत ॥

'उद्' पूर्वक 'आस्' धातु उदासीनता के अर्थ में वर्तता है—कर्त्तव्येष्वलसा उदासते = आलसी कर्त्तव्यों में उदासीन होते हैं ॥ 'उप' के योग में यह धातु सकर्मक और उपासना के अर्थ में होजाता है—विद्यामुपासते सुखार्थिनः = सुखार्थी विद्या की उपासना करते हैं ॥

---

* लिट् के अभ्यास में 'हन्' के 'ह' को 'ज' होजाता है, तथा लुङ् और लिङ् में 'हन्' को 'वध्' आदेश होजाता है ॥

दुह् = दुहना, भरना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति । दुग्धे, दुहाते, दुहते ॥ दुदोह । दुदुहे ॥ अधोक् । अदुग्ध ॥ अधुक्षत् । अधुक्षत-अदुग्ध* ॥ दोग्धासि । दोग्धासे ॥ धोक्ष्यति । धोक्ष्यते ॥ दोग्धु । दुग्धाम् ॥ दुह्यात् । दुहीत ॥ दुह्यात् । धुक्षीष्ट ॥ अधोक्ष्यत् । अधोक्ष्यत ॥

या = जाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

याति ॥ ययौ ॥ अयात् ॥ अयासीत् ॥ याता ॥ यास्यति ॥ यातु ॥ यायात् ॥ यायात् ॥ अयास्यत् ॥

'आ' के योग में 'या' धातु अकर्मक और आने के अर्थ में होजाता है—ग्रामादायाति = ग्राम से आता है ॥

इ = जाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

एति, इतः, यन्ति ॥ इयाय, ईयतुः, ईयुः ॥ ऐत्, ऐताम्, आयन् ॥ अगात्† ॥ एता ॥ एष्यति ॥ एतु ॥ इयात् ॥ ईयात् ॥ ऐष्यत् ॥

'अनु' उपसर्ग के योग में 'इ' धातु का अर्थ पीछे चलना वा सम्बद्ध होना है । यथा—यूथपतिमन्वेति सेना = सेना यूथपति के पीछे चलती है । शब्दमन्वेत्यर्थः = अर्थ शब्द से सम्बद्ध होता है । 'उप' के योग में समीप होना—गुरुमुपैति शिष्यः = शिष्य गुरु के समीप प्राप्त होता है । 'अभि-उप' के योग में स्वीकार करना वा प्राप्त होना—धर्मादर्थमभ्युपैति = धर्म से अर्थ को स्वीकार करता है वा प्राप्त होता है । 'अधि' के योग में स्मरण करना—मित्रमध्येति सङ्कटे = सङ्कट में मित्र को स्मरण करता है । 'अति' के योग में अतिक्रमण करना—शठो मर्यादामत्येति = शठ मर्यादा का अतिक्रमण

* 'दुह्' धातु को लुङ् लकार के परस्मैपद में 'क्स' प्रत्यय नित्य और आत्मनेपद में विकल्प से होता है ॥

† 'इ' धातु को लुङ् में 'गा' आदेश होता है ॥

करता है। 'अभि-प्र' के योग में चाहना—हितमभिप्रैति जनः=प्राणी हित को चाहता है। 'परि' के योग में व्याप्त होना अर्थ होता है—विभुः सर्वान् पर्येति=विभु सब में व्यापक होता है, अब जिन उपसर्गों के योग में 'इ' धातु अकर्मक होजाता है, उनको दिखलाते हैं—'प्र' के योग में परलोक जाना—सर्वं विहाय जीवः प्रैति=सब को छोड़कर जीव परलोक जाता है। 'उत्' के योग में प्रकाश करना—सूर्यः पूर्वस्यां दिश्युदेति=सूर्य पूर्वदिशा में उदय होता है। 'अभि' के योग में सम्मुख जाना—दीपस्याभ्येति शलभः=पतंग दीप के अभिमुख जाता है। 'अप' के योग में अलग होना—धर्मादपैति यः स एवानर्थः=धर्म से जो अलग होता है वही अनर्थ है। 'निर्' के योग में निकलना—गृहान्निर्गच्छति विरक्तः=विरक्त घर से निकलता है। 'निर्' के योग में 'इ' को 'गच्छ' आदेश होजाता है। 'आ' के योग में आना—गुरुगृहादेति स्नातकः=ब्रह्मचारी गुरु के घर से आता है। 'वि-परि' के योग में उलटा होना अर्थ होजाता है—विपत्तावनुकूलमपि विपर्येति=विपत्ति में अनुकूल भी उलटा होजाता है

अधि-इ = पढ़ना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्*

अधीते, अधीयाते, अधीयते ॥ अधिजगे ॥ अध्यैत ॥ अध्यैष्ट-अध्यगीष्ट ॥ अध्येता । अध्येष्यते ॥ अधीताम् ॥ अधीयीत ॥ अध्येषीष्ट ॥ अध्यैष्यत-अध्यगीष्यत ॥

शी = सोना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्†

शेते, शयाते, शेरते ॥ शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे ॥ अशेत ॥

* अधि पूर्वक 'इ' धातु को लिट् में नित्य और लुङ् व लङ् में विकल्प से 'गा' आदेश होता है ॥

† 'शी' धातु को सार्वधातुक लकारों में गुण और उनके प्रथमपुरुष के बहुवचन में 'अत्' प्रत्यय के पहिले 'र्' और होता है ॥

अशयिष्ट ॥ शयिता ॥ शयिष्यते ॥ शेताम् ॥ शयीत ॥ शयिषीष्ट ॥ अशयिष्यत ॥

'अधि' के योग में 'शी' धातु सकर्मक होजाता है—
शय्यामधिशेते = शय्या में सोता है ॥

यु = मिलाना वा अलग करना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

यौति, युतः, युवन्ति ॥ युयाव ॥ अयौत् ॥ अयावीत् ॥ यविता ॥ यविष्यति ॥ यौतु ॥ युयात् ॥ यूयात् ॥ अयविष्यत् ॥

ब्रू = बोलना, उभयपदी, द्विकर्मक, सेट्*

ब्रवीति-आह* । ब्रूते ॥ उवाच । ऊचे ॥ अब्रवीत् । अब्रूत ॥ अवोचत् । अवोचत ॥ वक्तासि । वक्तासे ॥ वक्ष्यति । वक्ष्यते ॥ ब्रवीतु । ब्रूताम् ॥ ब्रूयात् । ब्रुवीत ॥ उच्यात् । वक्षीष्ट ॥ अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत ॥

सू = जनना, आत्मनेपदी, सकर्मक, वेट्

सूते, सुवाते, सुवते ॥ सुषुवे ॥ असूत ॥ असोष्ट-असविष्ट ॥ सोता-सविता ॥ सोष्यते-सविष्यते ॥ सूताम् ॥ सुवेत ॥ सविषीष्ट ॥ असोष्यत-असविष्यत ॥

जागृ = जागना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

जागर्त्ति, जागृतः जाग्रति ॥ जजागार-जागराञ्चकार ॥ अजागः, अजागृताम्, अजागरुः ॥ अजागरीत् ॥ जागरिता ॥ जागरिष्यति ॥ जागर्त्तु ॥ जागृयात् ॥ जागर्यात् ॥ अजागरिष्यत् ॥

प्राकृते नेतव्यानि

पुरा ऋषयः स्वयमुप्तानि नीवाराद्यन्नानि जक्षुः । अस्यां

---

* लट् के पांच वचनों में 'ब्रू' धातु को विकल्प से 'आह' आदेश होकर दो २ रूप होते हैं और आर्धधातुक लकारों में 'ब्रू' को 'वच्' आदेश होजाता है, लुङ् में अङ् होकर 'उ' और बढ़जाता है ॥

पाठशालायां कति छात्राः सन्ति । वेदितोऽपि स नावेदीत् । गुरवोऽस्मान् सदा शिष्यासुः । अहनिष्यत चेत्कामादि शत्रून्तर्हि सुखमवेत्स्यथ । ह्यः सभायां त्वं कुत्रासथाः ? स यज्ञाय गां दुदोह । पठनार्थं यूयं कुत्र यातास्थ ? यदाऽहं भवत्पार्श्वं आयंस्तदैव भवन्तस्तत्र गताः । शिक्षांसमाप्य व्याकरणमध्येष्ये । पुरा भीष्मः शरशय्यायां शिश्ये । गोपालाः क्षीरे जलं युवन्ति । अस्मासु यो वाग्मी स एव सदसि ब्रूयात् । अन्तर्वत्नी तव पत्नी किमसोष्ट पुत्रं वा दुहितरम् । किमहं रात्रावपि जागृयाम् ?

संस्कृते नेतव्यानि

अजीर्ण में खाना मत खाओ । क्या तुम कल वहां पर थे ? क्या तुम मुझे नहीं जानते ? गुरु शिष्य को शिक्षा करता है । धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा ने मारा था । वृद्धों के सामने उच्चासन पर मत बैठो । राजा प्रजा के लिये पृथ्वी को दुहता है । वह पढ़ने के लिये वहां जाता है । अवकाश होने पर मैं वहां आऊँगा । उसने मेरे साथ ही व्याकरण पढ़ा था । दिन में कभी मत सोओ । किसान अन्न में से भुस को अलग करते हैं । यदि सत्य बोलोगे तो सब तुम्हारा विश्वास करेंगे । स्त्री पुरुष अपने अनुरूपही सन्तान उत्पन्न करते हैं । चोर रात को जागते हैं ॥

इत्यदादिगणः

अथ जुहोत्यादिगणः*

हु = होम करना, देना और खाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

जुहोति, जुहुतः, जुह्वति ॥ जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः ।

---

* इस गण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्लु' प्रत्यय होकर धातु को द्विर्वचन होजाता है 'श्लु' में श् और ल् का लोप होकर केवल 'उ' रहजाता है ॥

जुहोथ-जुहुविथ । जुहवाञ्चकार ॥ अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः ॥ अहौषीत्, अहौष्टाम्, अहौषुः ॥ होता ॥ होष्यति ॥ जुहोतु ॥ जुहुयात् ॥ हूयात् ॥ अहोष्यत् ॥

हा = छोड़ना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

जहाति, जहितः-जहीतः, जहति ॥ जहौ ॥ अजहात् ॥ अहासीत् ॥ हाता ॥ हास्यति ॥ जहातु । जहाहि-जहिहि-जहीहि ॥ जह्यात् ॥ हेयात् ॥ अहास्यत् ॥

हा = जाना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

जिहीते, जिहाते, जिहते ॥ जहे ॥ अजिहीत ॥ अहास्त ॥ हाता ॥ हास्यते ॥ जिहीताम् ॥ जिहीत ॥ हासीष्ट ॥ अहास्यत ॥

दा = देना, उभयपदी सकर्मक, अनिट्

ददाति, दत्तः, ददति । दत्ते, ददाते, ददते ॥ ददौ । ददे ॥ अददात् । अदत्त ॥ अदात् । अदित ॥ दातासि । दातासे ॥ दास्यति । दास्यते ॥ ददातु । दत्ताम् ॥ दद्यात् । ददीत ॥ देयात् । दासीष्ट ॥ अदास्यत् । अदास्यत ॥

'आ' उपसर्ग के योग में 'दा' धातु का अर्थ लेना और यह आत्मनेपदी भी होजाता है-विद्यामादत्ते = विद्या को ग्रहण करता है ॥

भी = डरना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

बिभेति, बिभितः-बिभीतः, बिभ्यति ॥ बिभाय, बिभ्यतुः, बिभ्युः । बिभयांचकार ॥ अबिभेत् ॥ अभैषीत्, अभैष्टाम्, अभैषुः ॥ भेता ॥ भेष्यति ॥ बिभेतु ॥ बिभियात्-बिभीयात् ॥ भीयात् ॥ अभेष्यत् ॥

भृ = धारण और पोषण, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

बिभर्त्ति, बिभृतः, बिभ्रति । बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते ॥

बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः। बभर्थ। बिभराञ्चकार। बभ्रे॥ अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः। अबिभ्रत॥ अभार्षीत्। अभृत॥ भर्त्तासि। भर्त्तासे॥ भरिष्यति भरिष्यते॥ बिभर्त्तु। बिभृताम्॥ बिभृयात्। बिभ्रीत॥ भ्रियात्। भृषीष्ट॥ अभरिष्यत्। अभरिष्यत॥

पृ=पालन और पूरण परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पिपर्त्ति, पिपूर्त्तः, पिपुरति॥ पपार, पपरतुः-पप्रतुः, पपरुः-पप्रुः॥ अपिपः, अपिपूर्त्ताम्, अपिपरुः॥ अपारीत्॥ परिता-परीता॥ परिष्यति-परीष्यति॥ पिपर्त्तु॥ पिपूर्यात्॥ पूर्यात्॥ अपरिष्यत्-अपरीष्यत्॥

प्राकृते नेतव्यानि

अतीतायां पौर्णमास्यां सोऽसौ जुहोम्। भूतिकामस्त्वं व्यसनानि सर्वथा हेयाः। जिज्ञासुः शास्त्रस्य प्रवक्तारमाचार्यं जिहीते। बुभुक्षितायान्नं देहि। स्निह्यान्जन्तवः सर्वे बिभ्यति। आश्रितं शरणापन्नं च यो न बिभर्त्ति स नृशंसतमः। सत्यकामोऽहं कथं स्वप्रतिज्ञां न पिपूर्याम् ?

संस्कृते नेतव्यानि

आनेवाली अमावस्या को अवश्य होम करूँगा। दुःख में जो नहीं छोड़ता वही सच्चा मित्र है। अन्धा लाठी के सहारे जाता है। मैंने उसको पुस्तक दिया था। बालक अजनबी से डरता है। सती पातिव्रत्य को धारण करती है। किसान पानी से खेतों को भरते हैं॥

इति जुहोत्यादिगणः

अथ दिवादिगणः*

दिव्=खेलना आदि, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

दीव्यति ॥ दिदेव ॥ अदीव्यत् ॥ अदेवीत् ॥ देविता ॥ देविष्यति ॥ दीव्यतु ॥ दीव्येत् ॥ दीव्यात् ॥ अदेविष्यत् ॥

नृत्=नाचना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

नृत्यति ॥ ननर्त्त, ननृततुः, ननृतुः ॥ अनृत्यत् ॥ अनर्त्तीत् ॥ नर्त्तिता ॥ नर्त्तिष्यति-नर्त्स्यति ॥ नृत्यतु ॥ नृत्येत् ॥ नृत्यात् ॥ अनर्त्तिष्यत्-अनर्त्स्यत् ॥

त्रस्=डरना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

त्रस्यति-त्रसति ॥ तत्रास, त्रेसतुः-तत्रसतुः, त्रेसुः-तत्रसुः ॥ अत्रस्यत्-अत्रसत् ॥ अत्रसीत् ॥ त्रसिता ॥ त्रसिष्यति ॥ त्रस्यतु ॥ त्रसतु ॥ त्रस्येत् ॥ त्रसेत् ॥ त्रस्यात् ॥ अत्रसिष्यत् ॥

पुष्=पुष्ट होना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पुष्यति ॥ पुपोष ॥ अपुष्यत् ॥ अपोषीत् ॥ पोष्टा ॥ पोक्ष्यति ॥ पुष्यतु ॥ पुष्येत् ॥ पुष्यात् ॥ अपोक्ष्यत् ॥

नश्=अदर्शन, न दीखना, परस्मैपदी, अकर्मक, वेट्†

नश्यति ॥ ननाश, नेशतुः, नेशुः । ननंष्ठ ॥ अनश्यत् ॥ अनशत् ॥ नंष्टा-नशिता ॥ नंक्ष्यति-नशिष्यति ॥ नश्यतु ॥ नश्येत् ॥ नश्यात् ॥ अनंक्ष्यत् ॥ अनशिष्यत् ॥

तृप्=तृप्त होना, परस्मैपदी, अकर्मक, वेट्

तृप्यति ॥ ततर्प । तत्रप्थ-ततर्प्थ ॥ अतृप्यत् ॥ अतार्प्सीत्-अतर्पीत्-अत्राप्सीत्-अतृपत् ॥ तर्पिता-त्रप्ता ॥ तर्पिष्यति-त्रप्स्यति ॥ तृप्यतु ॥ तृप्येत् ॥ तृप्यात् ॥ अतर्पिष्यत्-अत्रप्स्यत् ॥

---

* दिवादि गण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्यन्' प्रत्यय होता है, परन्तु 'त्रस्' धातु को विकल्प से होता है । श और न् का लोप होकर 'य' रहजाता है ॥

† 'नश' धातु को अनिट् पक्ष में नुम् का आगम होकर नंष्टा । नंक्ष्यति । इत्यादि रूप होते हैं ॥

असू=फेंकना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

अस्यति ॥ आस ॥ आस्यत् ॥ आस्थत्* ॥ असिता ॥ असिष्यति ॥ अस्यतु ॥ अस्येत् ॥ अस्यात् ॥ आसिष्यत् ॥

'सम्' के योग में 'असू' धातु का अर्थ संक्षेप करना, 'वि' के योग में विस्तार करना और निर् तथा अप् के योग में परास्त करना तथा 'अभि' के योग में अभ्यास करना होजाता है—विगृहीतं वाक्यं समस्यति, समस्तं व्यस्यति=विगृहीत वाक्य का समास करता है और समस्त का विग्रह करता है। जल्पेन वितण्डया च प्रतिवादिनं निरस्यति, अपास्यति वा=जल्प और वितण्डा से प्रतिवादी को परास्त करता है। शब्दबोधार्थं व्याकरणमभ्यस्यति=शब्दबोध के लिये व्याकरण का अभ्यास करता है ॥

जन्=उत्पन्न होना, प्रकट होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्†

जायते ॥ जज्ञे ॥ अजायत ॥ अजनि-अजनिष्ट ॥ जनिता ॥ जनिष्यते ॥ जायताम् ॥ जायेत ॥ जनिषीष्ट ॥ अजनिष्यत ॥

विद्=होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, अनिट्

विद्यते ॥ विविदे ॥ अविद्यत ॥ अवित्त ॥ वेत्ता ॥ वेत्स्यते ॥ विद्यताम् ॥ विद्येत ॥ वित्सीष्ट ॥ अवेत्स्यत ॥

मन्=जानना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

मन्यते ॥ मेने ॥ अमन्यत ॥ अमंस्त, अमंसाताम्, अमंसत ॥ मन्ता ॥ मंस्यते ॥ मन्यताम् ॥ मन्येत ॥ मंसीष्ट ॥ अमंस्यत ॥

'अभि' के योग में 'मन्' धातु का अर्थ अभिमान, 'सम्' के योग में सम्मान, अप और अव के योग में अपमान और 'अनु' के योग में अनुमति होजाता है—आत्मानमभिमन्यते=

* 'अस्' धातु को लुङ् में अङ् होकर 'स्थुक्' का आगम होजाता है ॥
† 'जन्' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'जा' आदेश होजाता है ॥

अपने को बड़ा मानता है। गुरुं सम्मन्यते = गुरु का सम्मान करता है। शत्रुमपमन्यते, अवमन्यते वा = शत्रु का अपमान करता है। स कस्याप्यनुमतिं नानुमन्यते = वह किसी की सलाह को नहीं मानता ॥

मृष् = सहना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

मृष्यति। मृष्यते ॥ ममर्ष। ममृषे ॥ अमृष्यत्। अमृष्यत ॥ अमर्षीत्। अमर्षिष्ट ॥ मर्षितासि। मर्षितासे ॥ मर्षिष्यति। मर्षिष्यते ॥ मृष्यतु। मृष्यताम् ॥ मृष्येत्। मृष्येत ॥ मृष्यात्। मर्षिषीष्ट ॥ अमर्षिष्यत्। अमर्षिष्यत ॥

रञ्ज् = रंगना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

रज्यति। रज्यते ॥ ररञ्ज। ररञ्जे ॥ अरज्यत्। अरज्यत ॥ अराङ्क्षीत्। अरङ्क्त ॥ रङ्क्तासि। रङ्क्तासे ॥ रङ्क्ष्यति ॥ रङ्क्ष्यते ॥ रज्यतु। रज्यताम् ॥ रज्येत्। रज्येत ॥ रज्यात्। रङ्क्षीष्ट ॥ अरङ्क्ष्यत्। अरङ्क्ष्यत ॥

'अनु' पूर्वक 'रञ्ज्' धातु प्रीति और 'वि' पूर्वक अप्रीति के अर्थ में और इन दोनों के योग में अकर्मक भी होजाता है—अनात्मवादिनः संसारे अनुरज्यन्ति = अनात्मवादी संसार में अनुरक्त होते हैं। आत्मवादिनस्त्वनात्मवन्तं सर्वं नश्वरं मत्वा अस्मात् विरज्यन्ति = और आत्मवादी अनात्मवान् सब को नाशशील मानकर इससे विरक्त होते हैं ॥

नह् = बान्धना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

नह्यति। नह्यते ॥ ननाह। नेहिथ-ननद्ध। नेहे ॥ अनह्यत्। अनह्यत। अनात्सीत्। अनद्ध ॥ नद्धासि। नद्धासे ॥ नत्स्यति। नत्स्यते ॥ नह्यतु। नह्यताम् ॥ नह्येत्। नह्येत ॥ नह्यात्। नत्सीष्ट ॥ अनत्स्यत्। अनत्स्यत ॥

'सम्' के योग में 'नह्' धातु अकर्मक और सन्नद्ध

होने के अर्थ में होजाता है—युद्धाय सन्नह्यते=युद्ध के लिये सन्नद्ध (तयार) होता है ॥

उद्-डी=उड़ना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

उड्डीयते ॥ उड्डिड्ये ॥ उदडीयत ॥ उदडयिष्ट ॥ उड्डयिता ॥ उड्डयिष्यते ॥ उड्डीयताम् ॥ उड्डीयेत ॥ उड्डयिषीष्ट ॥ उदडयिष्यत ॥

'डी' धातु प्रायः 'उद्' उपसर्ग पूर्वक ही प्रयुक्त होता है ॥

सू=उत्पन्न होना, आत्मनेपदी, सकर्मक, वेट्

सूयते ॥ सुषुवे ॥ असूयत ॥ असविष्ट-असोष्ट ॥ सविता-सोता ॥ सविष्यते-सोष्यते ॥ सूयताम् ॥ सूयेत ॥ सविषीष्ट-सोषीष्ट ॥ असविष्यत-असोष्यत ॥

दू=दुःखी होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

दूयते ॥ दुदुवे ॥ अदूयत ॥ अदविष्ट ॥ दविता ॥ दविष्यते ॥ दूयताम् ॥ दूयेत ॥ दविषीष्ट ॥ अदविष्यत ॥

जॄ=जीर्ण होना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

जीर्यति ॥ जजार, जजरतुः-जेरतुः ॥ अजीर्यत् ॥ अजारीत्-अजरत् ॥ जरिता-जरीता ॥ जरिष्यति-जरीष्यति ॥ जीर्यतु ॥ जीर्येत् ॥ जीर्यात् ॥ अजरिष्यत्-अजरीष्यत् ॥

प्राकृते नेतव्यानि

युधिष्ठिरः शकुनिना सह अक्षैर्दिदेव । ह्यस्तत्र नर्त्तका अनृत्यन् । बाल्ये सर्पादत्रसिषम् । वीतरोगस्त्वमचिरेणैव पोष्यसि । अन्यायकार्यवश्यमेव नंक्ष्यति । हव्येन देवाः कव्येन पितरश्च तृप्यन्ति । कूपे रज्जुमस्यत । कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति । यदि तत्र त्वमवेत्स्यथास्तर्ह्यमंस्ये सौभाग्यमात्मनः । साधवः खलवचनानि मृष्यन्ते । शूरः स्ववस्त्राणि रुधिरेण रज्यति । कोऽनुरज्येत मतिमान् विषयेष्वपहारिषु । मनुष्यः बुद्धिबलेन मदोन्मत्तं हस्तिनमपि

नह्यते। आकाशे पक्षिण उड्डीयन्ते। सुभद्रा अभिमन्युं सुषुवे। लूयन्ते पापिनः पापकर्मणा। जीर्यन्ति जरामापन्नाः॥

संस्कृते नेतव्यानि

मैं जुवा कदापि नहीं खेलूँगा। कामी पुरुष गणिकाओं को नचाते हैं। क्या मैं कायर हूँ जो युद्ध से डरूँ? व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है। आपस की फूट से कौरवों का नाश हुवा था। भूखा बातों से तृप्त नहीं होता। आकाश में ढेला फेंकोगे तो नीचे गिरेगा। तेरी पत्नी धार्मिक पुत्र उत्पन्न करे। तिलों में तेल होता है पर बालू में नहीं होता। राम ने पिता की आज्ञा को माना था। दुर्बल सबल के अत्याचार को सहता है। मैं धर्म के रंग से अपने हृदयपट को रँगूंगा। वह केवल ईश्वर में अनुराग करता है। शान्ति की रज्जु से मनरूप हस्ती को बान्धो। कल पिंजरे में से तोता उड़गया। गोबर में से कीड़े उत्पन्न होते हैं। जो किसी को सतावेगा वह आप भी दुःख पावेगा। काल पाकर सब वस्तु जीर्ण होते हैं॥

इति दिवादिगणः॥

अथ स्वादिगणः*

सु = मलना, अर्क खींचना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

सुनोति। सुनुते॥ सुषाव। सुषुवे॥ असुनोत्। असुनुत॥ असावीत्। असविष्ट-असोष्ट॥ सोतासि। सोतासे॥ सोष्यति। सोष्यते॥ सुनोतु। सुनुताम्॥ सुनुयात्। सुन्वीत॥ सूयात्। सविषीष्ट-सोषीष्ट॥ असोष्यत् असोष्यत॥

---

* स्वादिगण के समस्त धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्नु' प्रत्यय और बढ़जाता है॥

मि = फेंकना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

मिनोति । मिनुते ॥ मिमाय । मिम्ये ॥ अमिनोत् । अमिनुत ॥ अमासीत् । अमास्त ॥ मातासि । मातासे ॥ मास्यति । मास्यते ॥ मिनोतु । मिनुताम् ॥ मिनुयात् । मिन्वीत ॥ मीयात् । मासीष्ट ॥ अमास्यत् । अमास्यत ॥

'अनु' के योग में 'मि' धातु का अर्थ अनुमान 'उप' के योग में उपमान और 'प्र' के योग में प्रमाण होजाता है। यथा—पुत्रं दृष्ट्वा पितरमनुमिनोति = पुत्र को देखकर पिता का अनुमान करता है। गां दृष्ट्वा गवयमुपमिनोति = गाय को देखकर नीलगाय का उपमान करता है। प्रमाणैरर्थं प्रमिणोति = प्रमाणों से अर्थ को प्रमाणित करता है ॥

चि = चुनना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

चिनोति । चिनुते ॥ चिकाय-चिचाय । चिक्ये ॥ अचिनोत् । अचिनुत । अचैषीत् । अचेष्ट ॥ चेतासि । चेतासे । चेष्यति । चेष्यते ॥ चिनोतु । चिनुताम् ॥ चिनुयात् । चिन्वीत ॥ चीयात् । चेषीष्ट ॥ अचेष्यत् । अचेष्यत ॥

'उप' के योग में 'चि' धातु का अर्थ बढ़ाना और 'अप' के योग में घटाना होजाता है—यः धर्ममुपचिनोति स एव दुःखमपचिनोति = जो धर्म को बढ़ाता है वही दुःख को घटाता है

स्तृ = ढकना, छिपाना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

स्तृणोति । स्तृणुते ॥ तस्तार । तस्तरे ॥ अस्तृणोत् । अस्तृणुत ॥ अस्तार्षीत् । अस्तृत ॥ स्तर्त्तासि । स्तर्त्तासे । स्तरिष्यति । स्तरिष्यते ॥ स्तृणोतु । स्तृणुताम् ॥ स्तृणुयात् । स्तृण्वीत ॥ स्तर्यात् । स्तृषीष्ट ॥ अस्तरिष्यत् । अस्तरिष्यत ॥

'वि' के योग में फैलाना और 'सम्' और 'आ' के योग में बिछाना अर्थ होजाता है—विस्तृणोति यशः = यश को

फैलाता है । कुशान् संस्तृणोति आस्तृणोति वा = कुशों को बिछाता है ॥

शक् = सकना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

शक्नोति ॥ शशाक, शेकतुः, शेकुः । शशक्थ ॥ अशक्नोत् ॥ अशाक्षीत्-अशकत् ॥ शक्ता ॥ शक्ष्यति ॥ शक्नोतु ॥ शक्नुयात् ॥ शक्यात् ॥ अशक्ष्यत् ॥

आप् = पाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

आप्नोति ॥ आप, आपतुः, आपुः ॥ आप्नोत् ॥ आपत् ॥ आप्ता ॥ आप्स्यति ॥ आप्नोतु ॥ आप्नुयात् ॥ आप्यात् ॥ आप्स्यत् ॥

'वि' पूर्वक 'आप्' धातु व्याप्ति और 'सम्' पूर्वक समाप्ति के अर्थ में वर्तता है—विभुःसर्वं व्याप्नोति = विभु सब में व्यापक होता है । भृत्यः कार्यं समाप्नोति = भृत्य कार्य को समाप्त करता है ॥

अश् = पाना, आत्मनेपदी, सकर्मक, वेट्

अश्नुते ॥ आनशे ॥ आश्नुत ॥ आशिष्ट-आष्ट ॥ अशिता-अष्टा ॥ अशिष्यते-अक्ष्यते ॥ अश्नुताम् ॥ अश्नुवीत ॥ अशिषीष्ट-अक्षीष्ट ॥ आशिष्यत-आक्ष्यत ॥

प्राकृते नेतव्यानि

यज्ञार्थं सोमं सुनुत । शिशवः कन्दुकानि अमिन्वन् । मालाकारः पुष्पाणि चिनुते । दर्भैः वेदिं स्तृणुयात् । विद्यायाः पारं गन्तुं कोऽपि नाशकत् । धर्माय चेदशक्ष्यत तर्हि सुखमाप्स्यत । विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

संस्कृते नेतव्यानि

उसने दशमूल का अर्क खींचा था । वह धूम से अग्नि का अनुमान करता है । अध्यापक परीक्षा के लिये योग्य विद्यार्थियों को

चुनेगा । वे सब वस्त्रों से शरीर को ढकते हैं । अर्जुन कृष्ण की सहायता से कर्ण को मारने में समर्थ हुवा था । उद्योग से अवश्य मैं अपने अभीष्ट को पाऊँगा । वे सदा सुख और यश को पावें ॥

इति स्वादिगणः ॥

अथ तुदादिगणः*

तुद् = पीड़ादेना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

तुदति । तुदते ॥ तुतोद । तुतुदे ॥ अतुदत् । अतुदत ॥ अतौत्सीत् । अतुत्त ॥ तोत्तासि । तोत्तासे । तोत्स्यति । तोत्स्यते ॥ तुदतु । तुदताम् ॥ तुदेत् । तुदेत ॥ तुद्यात् । तुत्सीष्ट ॥ अतोत्स्यत् । अतोत्स्यत ॥

इष् = चाहना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्†

इच्छति ॥ इयेष, ईषतुः, ईषुः ॥ ऐच्छत् ॥ ऐषीत् ॥ एषिता-एष्टा ॥ एषिष्यति ॥ इच्छतु ॥ इच्छेत् ॥ इष्यात् ॥ ऐषिष्यत् ॥

'अधि' पूर्वक 'इष्' धातु सत्कार और 'प्रति' पूर्वक ग्रहण करने के अर्थ में वर्त्तता है—गुरुमधीच्छति = गुरु का सत्कार करता है । दानं प्रतीच्छति = दान को ग्रहण करता है ॥

व्रश्च् = काटना, परस्मैपदी, सकर्मक, वेट्‡

वृश्चति ॥ वव्रश्च ॥ अवृश्चत् ॥ अव्रश्चीत्-अव्राक्षीत् ॥ व्रश्चिता-व्रष्टा ॥ व्रश्चिष्यति-व्रक्ष्यति ॥ वृश्चतु ॥ वृश्चेत् ॥ वृश्च्यात् ॥ अव्रश्चिष्यत्-अव्रक्ष्यत् ॥

---

* तुदादिगण के समस्त धातुओं को सार्वधातुक लकारों में 'श' प्रत्यय होता है ॥
† 'इष्' धातु के 'ष्' को सार्वधातुक लकारों में 'च्छ्' आदेश होजाता है ॥
‡ 'व्रश्च्' धातु के 'र्' को सार्वधातुक लकारों में 'ऋ' सम्प्रसारण होजाता है ॥

प्रच्छ् = पूछना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्*

पृच्छति ॥ पप्रच्छ ॥ अपृच्छत् ॥ अप्राक्षीत् ॥ प्रष्टा ॥ प्रक्ष्यति ॥ पृच्छतु ॥ पृच्छेत् ॥ पृच्छयात् ॥ अप्रक्ष्यत् ॥

सृज् = बनाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

सृजति ॥ ससर्ज । ससर्जिथ-सस्रष्ठ ॥ असृजत् ॥ अस्राक्षीत् ॥ स्रष्टा ॥ स्रक्ष्यति ॥ सृजतु ॥ सृजेत् ॥ सृज्यात् ॥ अस्रक्ष्यत् ॥

'उद्' पूर्वक 'सृज्' धातु छोड़ने के अर्थ में वर्तता है—विरक्तः सर्वमुत्सृजति = विरक्त सब को छोड़ता है ॥

विश् = प्रवेश करना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

विशति ॥ विवेश ॥ अविशत् ॥ अविक्षत् ॥ वेष्टा ॥ वेक्ष्यति ॥ विशतु ॥ विशेत् ॥ विश्यात् ॥ अवेक्ष्यत् ॥

'सम्' पूर्वक 'विश्' धातु शयन और 'उप' पूर्वक स्थिति अर्थ रखता है और अकर्मक भी होजाता है—रात्रौ जनाः संविशन्ति = रात्रि में मनुष्य सोते हैं । गेहे उपविशति = घर में ठहरता है ॥

सद् = दुःखी होना वा आश्रयलेना, परस्मैपदी, अकर्मक वा सकर्मक, अनिट्†

सीदति ॥ ससाद । सेदिथ-ससत्थ ॥ असीदत् ॥ असदत् ॥ सत्ता ॥ सेत्स्यति ॥ सीदतु ॥ सीदेत् ॥ सद्यात् ॥ असेत्स्यत् ॥

'प्र' पूर्वक 'सद्' धातु प्रसाद 'वि' पूर्वक विषाद 'अव' पूर्वक अवसाद (ह्रास) 'उद्' पूर्वक उत्साद (नाश) और 'आ' पूर्वक सामीप्य अर्थ में वर्त्तता है और 'आ' को छोड़ कर इन सब उपसर्गों के योग में अकर्मक भी होजाता है—

---

* 'प्रच्छ्' धातु के 'र्' को भी सार्वधातुक लकारों में 'ऋ' सम्प्रसारण होता है ॥

† 'सद्' धातु दुःखी होने के अर्थ में अकर्मक और आश्रयलेने के अर्थ में सकर्मक है

मनः धर्माचरणेन प्रसीदति, तदेव पापाचरणेन विषीदति = मन धर्माचरण से प्रसन्न होता है और वही पाप के आचरण से विषण्ण होता है। अकर्मण्योऽवसीदति = आलसी ह्रास को प्राप्त होता है। पापकृदुत्सीदति = पापी नष्ट होता है। गुरुमासीदति = गुरु के समीप जाता है॥

जुष् = सेवन करना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

जुषते॥ जुजुषे॥ अजुषत॥ अजोषिष्ट॥ जोषिता॥ जोषिष्यते॥ जुषताम्॥ जुषेत॥ जोषिषीष्ट॥ अजोषिष्यत॥

उद्—विज् = डरना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

उद्विजते॥ उद्विविजे॥ उदविजत॥ उदविजिष्ट॥ उद्विजिता॥ उद्विजिष्यते॥ उद्विजताम्॥ उद्विजेत॥ उद्विजिषीष्ट॥ उदविजिष्यत॥

'विज्' धातु सर्वत्र 'उद्' उपसर्ग पूर्वक ही प्रयुक्त होता है

क्षिप् = फेंकना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

क्षिपति॥ क्षिपते॥ चिक्षेप। चिक्षिपे॥ अक्षिपत्। अक्षिपत॥ अक्षैप्सीत्। अक्षिप्त॥ क्षेप्तासि। क्षेप्तासे॥ क्षेप्स्यति। क्षेप्स्यते॥ क्षिपतु। क्षिपताम्॥ क्षिपेत्। क्षिपेत॥ क्षिप्यात्। क्षेप्सीष्ट॥ अक्षेप्स्यत्। अक्षेप्स्यत॥

'सम्' के योग में 'क्षिप्' धातु का अर्थ संक्षेप, 'उत्' के योग में उत्क्षेप, 'अव' के योग में अवक्षेप और 'आ' के योग में आक्षेप होजाता है—पदानि समासेन संक्षिपति = पदों का समास से संक्षेप करता है। लोष्टमुत्क्षिपति = ढेले को ऊपर फेंकता है। कूपे रज्जुमवक्षिपति = कूप में रस्सी को नीचे फेंकता है। खलः साधुमाक्षिपति = खल साधु पर आक्षेप करता है॥

मुच् = छूटना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्*

मुञ्चति । मुञ्चते ॥ मुमोच । मुमुचे ॥ अमुञ्चत् । अमुञ्चत ॥ अमुचत् । अमुक्त ॥ मोक्तासि । मोक्तासे ॥ मोक्ष्यति । मोक्ष्यते ॥ मुञ्चतु । मुञ्चताम् ॥ मुञ्चेत् । मुञ्चेत ॥ मुच्यात् । मुक्षीष्ट ॥ अमोक्ष्यत् । अमोक्ष्यत ॥

'मुच्' के ही समान विद् = पाना और सिच् = सींचना धातुओं के रूप भी होते हैं ॥

'नि' पूर्वक 'सिच्' धातु निषेक, 'अभि' पूर्वक अभिषेक और 'उत्' पूर्वक उत्सेक (गर्व) अर्थ में वर्त्तता है—पुमान् योषिति वीर्यं निषिञ्चति = पुरुष स्त्री में वीर्य का निषेक करता है। राजा यौवराज्ये ज्येष्ठपुत्रमभिषिञ्चति = राजा यौवराज्य में ज्येष्ठपुत्र का अभिषेक करता है । उत्सिञ्चति मदोद्धतः = मद से उद्धत गर्व करता है ॥

आ-दृ = आदर करना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

आद्रियते ॥ आदद्रे ॥ आद्रियत ॥ आदृत ॥ आदर्त्ता ॥ आदरिष्यते ॥ आद्रियताम् ॥ आद्रियेत ॥ आदृषीष्ट ॥ आदरिष्यत ॥

'दृ' धातु सर्वत्र 'आ' उपसर्ग पूर्वक ही प्रयुक्त होता है ॥

मृ = मरना आत्मनेपदी तथा परस्मैपदी अकर्मक, अनिट्†

म्रियते ॥ ममार ॥ अम्रियत ॥ अमृत ॥ मर्त्ता ॥ मरिष्यति ॥ म्रियताम् ॥ म्रियेत ॥ मृषीष्ट ॥ अमरिष्यत् ॥

प्राकृते नेतव्यानि

दुर्योधनः राज्यलोभेन पाण्डवान् तुतुदे । हस्तसभायां सर्वे त्वदागमनमैच्छन् । तक्षा काष्ठार्थं वृक्षमवृश्चत् । त्वं मत्तः कं प्रश्नं

---

* मुच्, विद् और सिच् धातुओं को सार्वधातुक लकारों में (नुम्) का आगम होजाता है ॥

† 'मृ' धातु से सार्वधातुक लकारों में आत्मनेपद और आर्धधातुक लकारों में आशीर्लिङ् को छोड़कर परस्मैपद के प्रत्यय होते हैं ॥

प्रष्टासि ? पुष्पेभ्यः स्रजं स्रक्ष्यामि । स गृहं प्रविशति । पङ्के गौः सीदति । शिशुः भीतःसन् मातरमासीदति । सुखार्थी सदा धर्मं जुषेत । तव शत्रवः सदोद्विजिषीरन् । कृषकाः बीजानि क्षेत्रे क्षिपन्ते । स एव त्वां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । जीवतोः पित्रोरेव सुखमविदम् । सेक्तास्म्यचिरेणैव क्षेत्रम् । सर्वदा गुरूनाद्रियेत ॥ अकाले कोऽपि मा मृषीष्ट ॥

संस्कृते नेतव्यानि

उपेक्षा किया हुवा रोग पीछे सतावेगा । भूखा अन्न को चाहता है । हरे और फलवाले वृक्ष को मत काटो । तू मुझसे क्या पूछता था ? कुम्हार घड़े को बनाता है । मल्लाह जल में प्रवेश करते हैं । उसने केवल धर्म का आश्रय लिया था । मैं पाप का कभी सेवन न करूँगा । बालक सर्प से डरता है । यदि खेत में बीज फेंकोगे तो अन्न पाओगे । तत्त्वज्ञानी बन्धन से छूटता है । धर्म से अर्थ को पाना चाहिये । यदि फल चाहते हो तो मूल को सींचो । सुशील वृद्धों का आदर करते हैं । रोग से प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य मरते हैं ॥

इति तुदादिगणः ॥

अथ रुधादिगणः*

रुध् = रोकना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

रुणद्धि, रुन्धः, रुन्धन्ति । रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धिरे ॥ रुरोध । रुरुधे । अरुणत् । अरुन्ध ॥ अरुधत्—अरौत्सीत् । अरुद्ध ॥ रोद्धासि । रोद्धासे ॥ रोत्स्यति । रोत्स्यते ॥ रुणद्धु । रुन्धाम् ॥ रुन्ध्यात् । रुन्धीत ॥ रुध्यात् । रुत्सीष्ट ॥ अरोत्स्यत् । अरोत्स्यत ॥

---

* रुधादिगण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्नम्' प्रत्यय होता है। श और म् का लोप होकर केवल 'न' रहजाता है ॥

'वि' के योग में 'रुध्' धातु का विरोध, 'अनु' के योग में अनुरोध और 'नि' के योग में निरोध अर्थ होता है— हितं विरुणद्धि मूर्खः = मूर्ख हित का विरोध करता है। आग्रही स्वपक्षमनुरुन्धे = आग्रही अपने पक्ष का अनुरोध करता है। शत्रुं निरुणद्धि = शत्रु का निरोध करता है॥

भिद् = तोड़ना, फोड़ना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

भिनत्ति। भिन्ते॥ बिभेद। बिभिदे॥ अभिनत्। अभिन्त॥ अभिदत्-अभैत्सीत्। अभित्त॥ भेत्तासि। भेत्तासे॥ भेत्स्यति॥ भेत्स्यते॥ भिनत्तु। भिन्ताम्॥ भिन्द्यात्। भिन्दीत॥ भिद्यात्। भित्सीष्ट॥ अभेत्स्यत्। अभेत्स्यत॥

युज् = मिलाना, जोड़ना, उभयपदी, सकर्मक अनिट्

युनक्ति। युङ्क्ते॥ युयोज। युयुजे॥ अयुनक्। अयुङ्क्त॥ अयुजत्-अयौक्षीत्। अयुक्त॥ योक्तासि। योक्तासे॥ योक्ष्यति। योक्ष्यते॥ युनक्तु। युङ्क्ताम्॥ युञ्ज्यात्। युञ्जीत॥ युज्यात्। युक्षीष्ट॥ अयोक्ष्यत्। अयोक्ष्यत॥

'प्र' उपसर्ग के योग में 'युज्' धातु का अर्थ प्रयोग करना, 'उद्' के योग में उद्योग करना, 'नि' के योग में नियत करना, 'अनु' के योग में प्रश्न करना और 'उप' के योग में उपकार करना होजाता है—अपदं न प्रयुञ्जीत = पद रहित वाक्य का प्रयोग नहीं करना चाहिये। साधवः पर हितायोद्युञ्जते = सज्जन पर हित के लिये उद्योग करते हैं। सेवायां भृत्यं नियुङ्क्ते = सेवा में भृत्य को नियुक्त करता है। शिष्यः गुरुमनुयुङ्क्ते = शिष्य गुरु से पूछता है। धनं पर हितायोपयुङ्क्ते = धन को परहित के लिये लगाता है। इनमें से केवल 'उद्' के योग में यह धातु अकर्मक होजाता है॥

पिष् = पीसना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पिनष्टि, पिंष्टः, पिंषन्ति ॥ पिपेष, पिपिषतुः, पिपिषुः ॥ अपिनट्, अपिंष्टाम, अपिंषन् ॥ अपिषत् ॥ पेष्टा ॥ पेक्ष्यति ॥ पिनष्टु ॥ पिंष्यात् ॥ पिष्यात् ॥ अपेक्ष्यत् ॥

विज् = डरना, कांपना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

विनक्ति ॥ विवेज ॥ अविनक् ॥ अविजीत् ॥ विजिता ॥ विजिष्यति ॥ विनक्तु ॥ विञ्ज्यात् ॥ विज्यात् ॥ अविजिष्यत् ॥

भुज् = पालना और खाना, परस्मै० आत्मने० सकर्मक, अनिट्*

भुनक्ति । भुङ्क्ते ॥ बुभोज । बुभुजे ॥ अभुनक् । अभुङ्क्त ॥ अभौक्षीत् । अभुक्त ॥ भोक्तासि । भोक्तासे ॥ भोक्ष्यति । भोक्ष्यते ॥ भुनक्तु । भुङ्क्ताम् ॥ भुञ्ज्यात् । भुञ्जीत ॥ भुज्यात् ॥ भुक्षीष्ट ॥ अभोक्ष्यत् । अभोक्ष्यत ॥

हिंस् = मारना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

हिनस्ति ॥ जिहिंस ॥ अहिनत् ॥ अहिंसीत् ॥ हिंसिता ॥ हिंसिष्यति ॥ हिनस्तु ॥ हिंस्यात् ॥ हिंस्यात् ॥ अहिंसिष्यत् ॥

प्राकृते नेतव्यानि

अभिमन्युः चक्रव्यूहेन भीष्मादीनां षण्णां महारथिनां मार्गं रुरुधे ॥ स मुष्टिना मृत्पिण्डमभिनत् । तक्षा शकटे धुरमयुक्त । शिलापट्टे माषान् पेक्ष्यामि । शिशुः चित्रलिखितात् सिंहादपि विनक्ति । स राजा धर्मतः सर्वां भुनक्तु पृथिवीमिमाम् । क्षुधा चेद्भुञ्जीत । मा हिंस्यात् कमपि प्राणिनम् ॥

संस्कृते नेतव्यानि

मैं उसे वहां जाने से रोकूँगा । जापान ने रूस का मान तोड़ दिया । डाक्टर टूटी हुई हड्डी को जोड़ता है । अँगरेज़ों की

* 'भुज्' धातु पालन अर्थ में परस्मैपदी और भक्षण अर्थ में आत्मनेपदी है ॥

कृपा से कलें अन्न पीसती हैं । जिस राज्य में बलवान् से निर्बल कांपते हैं वह राज्य कैसा ? जो पृथिवी को पालेगा वही उसके मधुर फलों को खावेगा । उसने सिवाय अपने मन के और किसी को नहीं मारा ॥

इति रुधादिगणः ॥

अथ तनादिगणः*

तन् = फैलाना, बढ़ाना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

तनोति । तनुते ॥ ततान, तेनतुः, तेनुः । तेने ॥ अतनोत् । अतनुत ॥ अतनीत्-अतानीत् । अतत-अतनिष्ट । अतथाः-अतनिष्ठाः ॥ तनितासि । तनितासे ॥ तनिष्यति । तनिष्यते ॥ तनोतु । तनुताम् ॥ तनुयात् । तन्वीत ॥ तन्यात् । तनिषीष्ट ॥ अतनिष्यत् । अतनिष्यत ॥

मन् = मानना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

मनुते ॥ मेने ॥ अमनुत ॥ अमनिष्ट ॥ मनिता ॥ मनिष्यते ॥ मनुताम् ॥ मन्वीत ॥ मनिषीष्ट ॥ अमनिष्यत ॥

कृ = करना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

करोति । कुरुते ॥ चकार, चक्रतुः । चकर्थ । चक्रे ॥ अकरोत् । अकुरुत ॥ अकार्षीत् । अकृत ॥ कर्त्तासि । कर्त्तासे ॥ करिष्यति । करिष्यते ॥ करोतु । कुरु । करवाणि । कुरुताम् । कुरुष्व । करवै ॥ कुर्यात् । कुर्वीत ॥ क्रियात् । कृषीष्ट ॥ अकरिष्यत् । अकरिष्यत ॥

'सम्' के योग में 'कृ' धातु का अर्थ संस्कार-- अग्निना जलं संस्करोति = अग्नि से जल का संस्कार करता है । 'अधि' के

---

* तनादिगण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'उ' प्रत्यय होता है ॥

योग में अधिकार—शत्रुमधिकरोति=शत्रु पर अधिकार करता है। 'अनु' के योग में अनुकरण—पितरमनुकरोति=पिता का अनुकरण करता है। 'परा' और 'निर्-आ' के योग में निवारण—शत्रून् पराकरोति, निराकरोति वा=शत्रुओं को निवारण करता है। 'वि' के योग में विकार—क्रोष्टा विकुरुते स्वरान्=शृगाल स्वरों को विकृत करता है अर्थात् अपशब्द करता है। 'अप' के योग में अपकार—शत्रुमपकुरुते=शत्रु का अपकार करता है। 'उप' के योग में उपकार—मित्रमुपकुरुते=मित्र का उपकार करता है। 'प्रति' के योग में प्रतीकार—रोगं प्रतिकरोति=रोग का प्रतीकार करता है। 'आविस्' के योग में आविष्कार—कलामाविष्करोति=कला का आविष्कार करता है। 'नमस्' के योग में नमस्कार—गुरून् नमस्करोति=गुरुओं को नमस्कार करता है। 'ऊरी' 'उररी' के योग में स्वीकार—प्रतिज्ञातमर्थमूरीकरोति, उररी करोति वा=प्रतिज्ञा किये हुवे अर्थ को स्वीकार करता है। और 'तिरस्' के योग में तिरस्कार होजाता है—धूर्त्तं तिरस्करोति=धूर्त्त का तिरस्कार करता है॥

प्राकृते नेतव्यानि

सुचरित्रैस्त्वमात्मनो यशस्तनितासे। समदर्श्यात्मवत् सर्वाणि भूतानि मनुते। केनापि सह विवादं मा कुर्वीत॥

संस्कृते नेतव्यानि

विद्या से बुद्धि फैलती है। शास्त्र की आज्ञा को सदा मानना चाहिये। जो गुरु आज्ञा देंगे वह मैं करूँगा॥

इति तनादिगणः॥

अथ क्र्यादि गणः *

क्री = खरीदना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

क्रीणाति । क्रीणीते ॥ चिक्राय । चिक्रिये ॥ अक्रीणात् ॥ अक्रीणीत । अक्रैषीत् ॥ अक्रेष्ट । क्रेतासि ॥ क्रेतासे । क्रेष्यति ॥ क्रेष्यते । क्रीणातु । क्रीणीताम् ॥ क्रीणीयात् ॥ क्रीणीयीत ॥ क्रीयात् । क्रेषीष्ट ॥ अक्रेष्यत् , अक्रेष्यत ॥

'वि' के योग में 'क्री' धातु का अर्थ बेचना और 'प्रति' के योग में बदलना होजाता है—अन्नं विक्रीणाति = अन्न को बेचता है । तिलेभ्यः माषान् प्रतिक्रीणीते = तिलों से उड़दों को बदलता है ॥

पू = शोधना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

पुनाति । पुनीते ॥ पुपाव । पुपुवे ॥ अपुनात् । अपुनीत ॥ अपावीत् । अपविष्ट ॥ पवितासि । पवितासे ॥ पविष्यति । पविष्यते ॥ पुनातु । पुनीताम् ॥ पुनीयात् । पुनीत ॥ पूयात् । पविषीष्ट ॥ अपविष्यत् । अपविष्यत ॥

वृ = विभाग करना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

वृणीते । वृणाते । वृणते ॥ वव्रे, वव्राते, वव्रिरे ॥ अवृणीत । अवरिष्ट—अवरीष्ट—अवृत ॥ वरिता—वरीता ॥ वरिष्यते—वरीष्यते ॥ वृणीताम् ॥ वृणीत ॥ वरिषीष्ट—वृषीष्ट ॥ अवरिष्यत—अवरीष्यत ॥

बन्ध् = बान्धना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

बध्नाति ॥ बबन्ध ॥ अबध्नात् ॥ अभान्त्सीत्, अबान्धाम्, अभान्त्सुः ॥ बन्धा ॥ भन्त्स्यति ॥ बध्नातु । बधान ॥ बध्नीयात् ॥ बध्यात् ॥ अभन्त्स्यत् ॥

---

* क्र्यादिगण के समस्त धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'आ' प्रत्यय होताहै ॥

'प्र' के योग में प्रबन्ध, 'सम्' के योग में सम्बन्ध, 'नि' के योग में निबन्ध 'प्रति' के योग में प्रतिबन्ध और 'अनु' के योग में अनुबन्ध अर्थ होजाते हैं—पूर्त्तये कार्यान् प्रबध्नाति = पूर्त्ति के लिये कार्यों का प्रबन्ध करता है। गार्हस्थ्याय दारैरात्मानं सम्बध्नाति = गृहस्थ के लिये स्त्री से अपने को सम्बद्ध करता है। कविः यशसे, लाभाय च ग्रन्थं निबध्नाति = कवि यश और लाभ के लिये ग्रन्थ को बनाता है। सुकार्ये विघ्नाः पुरुषं प्रतिबध्नन्ति = सुकार्य में विघ्न मनुष्य को प्रति बन्धक होते हैं। भवे भवे संस्कारा अनुबध्नन्ति प्राणिनम् = जन्म जन्म में संस्कारों का प्राणी को अनुबन्ध होताहै॥

ज्ञा = जानना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्*

जानाति॥ जज्ञौ॥ अजानात्॥ अज्ञासीत्॥ ज्ञाता॥ ज्ञास्यति॥ जानातु॥ जानीयात्॥ ज्ञायात्—ज्ञेयात्॥ अज्ञास्यत्॥

अश् = खाना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

अश्नाति॥ आश॥ आश्नात्॥ आशीत्॥ अशिता॥ अशिष्यति॥ अश्नातु॥ अशान॥ अश्नीयात्॥ अश्यात्॥ आशिष्यत्॥

ग्रह् = ग्रहण करना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

गृह्णाति। गृह्णीते॥ जग्राह। जगृहे॥ अगृह्णात्। अगृह्णीत॥ अग्रहीत्। अग्रहीष्ट॥ ग्रहीतासि। ग्रहीतासे॥ ग्रहीष्यति। ग्रहीष्यते॥ गृह्णातु। गृह्णीताम्॥ गृह्णीयात्। गृह्णीत॥ गृह्यात्। ग्रहीषीष्ट॥ अग्रहीष्यत्। अग्रहीष्यत॥

'सम्' के योग में ग्रह् धातु का अर्थ संग्रह, 'नि' के योग में निग्रह, 'वि' के योग में विग्रह, 'आ' के योग में आग्रह, 'प्रति' के योग में प्रतिग्रह, 'अनु' के योग में

* 'ज्ञा' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'जा' आदेश होजाताहै॥

अनुग्रह और 'अव' के योग में अवग्रह (वृष्टिप्रतिबन्ध) होजाता है—गृहस्थो योगक्षेमार्थं अन्नादीन् संगृह्णाति = गृहस्थ योगक्षेम के लिये अन्नादिकों का संग्रह करता है। धीरः स्वमन एव निगृह्णाति = धीर अपने मन को ही निग्रह करता है। अध्यापकश्छात्राणां बोधाय समस्तं पदं विगृह्णाति = अध्यापक छात्रों के बोध के लिये समस्त पद का विग्रह करता है। शूराः युद्धे शत्रून् विगृह्णन्ति = शूर युद्ध में शत्रुओं से विग्रह करते हैं। आग्रही स्ववचनमेवागृह्णाति = आग्रही अपने वचन का ही आग्रह करता है। दीनाः दानं प्रतिगृह्णन्ति = दीन दान का प्रतिग्रह करते हैं। दयालवः प्राणिमात्रमनुगृह्णन्ति = दयालु प्राणीमात्र पर अनुग्रह करते हैं। पाश्चात्यो वातः वृष्टिमवगृह्णाति = पश्चिम का वायु वृष्टि का अवग्रह करता है॥

प्राकृते नेतव्यानि

कृषकेभ्यो वणिगन्नमक्रीणीत। कदा स्वागमनेन मद्गृहं पवितास्य? स मरणात्प्रागेव पुत्रादिभ्यो धनमवृत। पशून् गोष्ठे बध्नीयाः। विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥ अजीर्णे ज्वरे वा कदापि नाश्नीयात्। धर्मादपेतमर्थं न ग्रहीष्यामि॥

संस्कृते नेतव्यानि

धन से अन्न ख़रीदूँगा। मन के भावों को पवित्र करना चाहिये। दाता याचकों के लिये दान का विभाग करता है। तृणों का समूह हाथी को बांधता है। अपने हित को पशु भी जानते हैं। भूख लगने पर खाऊँगा। अन्याय से किसी के पदार्थ को मत ग्रहण करो॥

इति क्र्यादिगणः

अथ चुरादिगणः*

चुर्=चोरी करना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

चोरयति। चोरयते ॥ चोरयाञ्चकार। चोरयाम्बभूव। चोरयामास। चोरयाञ्चक्रे ॥ अचोरयत्। अचोरयत ॥ अचूचुरत्। अचूचुरत ॥ चोरयितास्मि। चोरयितासे ॥ चोरयिष्यति। चोरयिष्यते ॥ चोरयतु। चोरयताम् ॥ चोरयेत्। चोरयेत ॥ चोर्यात्। चोरयिषीष्ट ॥ अचोरयिष्यत्। अचोरयिष्यत ॥

इसी प्रकार पूज्=पूजना, भूष्=सजना, मृष्=सहना, कथ=कहना, गण्=गिनना और स्पृह्=चाहना इत्यादि चुरादिगणीय धातुओं के रूप होते हैं ॥

प्राकृते परिणामयितव्यानि

तस्य वक्त्रं चन्द्रमसोऽभिरामतामचूचुरत्। गुरून् वृद्धांश्च सदा पूजयेत्। विनीतश्छात्रः विद्ययात्मानं भूषयते। शान्त्यै तस्य दुर्वचनान्यप्यमर्षयम्। सः स्वमुखादेवात्मचरितं कथयिष्यति। न गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्। कस्याप्यनिष्टं न स्पृहयेत् ॥

संस्कृते परिणामयितव्यानि

चोर रात को चोरी करते हैं। वह अपने माता पिता की पूजा करता है। पूर्वकाल की स्त्रियां विद्या के भूषण से भूषित होती थीं। ईर्ष्यी दूसरे की उन्नति का नहीं सहता। तुमको जो कुछ कहना है कहो। बुद्धिमान् कार्यार्थी सुख और दुःख को कुछ नहीं गिनता॥

इति चुरादिगणः

---

* चुरादिगण के सब धातुओं से 'णिच्' प्रत्यय होकर प्रयोजक व्यापार में जैसे क्रियाओं के रूप होते हैं वैसेही होजाते हैं। चुरादिगणीय धातुओं से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों के प्रत्यय होते हैं, जहां क्रियाफल कर्तृगामी न हो वहां परस्मैपद और जहां कर्तृगामी हो वहां आत्मनेपद होता है ॥

उक्त दशगणों के अतिरिक्त (जिनका वर्णन हुवा) दशही प्रक्रिया भी हैं जिनमें प्रत्ययों के भेद से क्रियाओं के रूप में कुछ परिवर्त्तन होजाता है, अब हम संक्षेप से क्रमशः उनका भी निरूपण करते हैं :—

(१) णिजन्तप्रक्रिया

कारक विषय में कह आये हैं कि प्रेरणा करनेवाले को प्रयोजक कहते हैं और उसीकी हेतु संज्ञा भी है और जिसको प्रेरणा की जाती है, वह प्रयोज्य कहलाता है । जहां (हेतु) प्रयोजक कर्त्ता का व्यापार हो अर्थात् क्रिया प्रयोजक कर्त्ता के द्वारा सम्पादित हुई हो, वहां धातु से 'णिच्' प्रत्यय होकर दश लकारों की उत्पत्ति होती है— भवन्तं प्रेरयति = भावयति । कारयति । इत्यादि ॥

यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि अण्यन्त क्रिया का कर्त्ता ण्यन्त क्रिया के प्रयोग में प्रायः कर्म बन जाता है । यथा—शिष्यः पुस्तकं पठति = शिष्य पुस्तक को पढ़ता है । यहां शिष्य जो कर्त्ता है वह—शिष्यं पुस्तकं पाठयति = शिष्य को पुस्तक पढ़ाता है । इस णिजन्त के प्रयोग में कर्म होगया ॥

प्रायः प्रयोजक कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति और प्रयोज्य कर्त्ता में तृतीया विभक्ति रहती है । यथा—देवदत्तः यज्ञदत्तेन दापयति = देवदत्त यज्ञदत्त से दिलाता है । विष्णुमित्रः सोमदत्तेन पाचयति = विष्णुमित्र सोमदत्त से पकवाता है ॥

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, भोजनार्थक, शिक्षणार्थक तथा अकर्मक धातुओं से जो प्रेरणार्थक क्रियायें बनती हैं, उनमें प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होकर द्वितीयान्त होजाता है । गत्यर्थक- मन्त्री दूतं गमयति, यापयति वा = मन्त्री दूत को भिजवाता है । परन्तु गत्यर्थकों में भी 'नी' और 'वह्' धातु का प्रयोज्य कर्त्ता

तृतीयान्तही रहता है—स्वामी भृत्येन भारं नाययति, वाहयति वा=स्वामी भृत्य से बोझ उठवाता है। बुद्ध्यर्थक—पिता पुत्रं बोधयति, वेदयति वा=पिता पुत्र को जनाता है। भोजनार्थक—यजमानः ब्राह्मणं भोजयति, आशयति वा=यजमान ब्राह्मण को खिलाता है। शिक्षणार्थक—गुरुः शिष्यमध्यापयति, पाठयति वा=गुरु शिष्य को पढ़ाता है। अकर्मक—गृहस्थोऽतिथिमासयति=गृहस्थ अतिथि को बिठलाता है। माता वत्सं शाययति=माता बालक को सुलाती है॥

प्रेरणार्थक हृ और कृ धातुओं का प्रयोज्य कर्त्ता द्वितीयान्त और तृतीयान्त दोनों रहता है—स तं तेन वा भारं हारयति, श्रमं कारयति=वह उसको वा उससे बोझ उठवाता है, श्रम कराता है॥

णिजन्त धातुओं से यदि क्रियाफल कर्त्ता में जावे तो आत्मनेपद और यदि क्रियाफल कर्मगामी हो तो परस्मैपद होता है॥

अब हम संक्षेप के लिये इन प्रक्रियाओं में केवल तीन लकारों के रूप सो भी प्रथमपुरुष के एकवचन में दिखलावेंगे अर्थात् वर्त्तमान में लट् के भूत में लुङ् के और भविष्य में लृङ् के। शेष लकारों तथा पुरुषों और वचनों के रूप सुधी पाठक स्वयं अनुसन्धान करके बनावें॥

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	भावयति-ते	अबीभवत्-त	भावयिष्यति-ते
पा	पाययति-ते	अपीप्यत्-त	पाययिष्यति-ते
स्था	स्थापयति-ते	अतिष्ठिपत्-त	स्थापयिष्यति-ते
गम्	गमयति-ते	अजीगमत्-त	गमयिष्यति-ते
श्रु	श्रावयति-ते	अशिश्रवत्-त अशुश्रवत्-त	श्रावयिष्यति-ते

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
वृत्	वर्त्तयति-ते	अवीवृतत्-त	वर्त्तयिष्यति-ते
		अववर्त्तत्-त	
पच्	पाचयति-ते	अपीपचत्-त	पाचयिष्यति-ते
यज्	याजयति-ते	अयीयजत्-त	याजयिष्यति-ते
लभ्	लम्भयति-ते	अललम्भत्-त	लम्भयिष्यति-ते
वप्	वापयति-ते	अवीवपत्-त	वापयिष्यति-ते
अधीङ्	अध्यापयति-ते	अध्यजीगपत्-त	अध्यापयिष्यति-ते
		अध्यापिपत्-त	
हन्	घातयति-ते	अजीघनत्-त	घातयिष्यति-ते
भी	भापयति-ते	अबिभीपत्-त	भापयिष्यति-ते
		अबिभीषत	भीषयिष्यते
दा	दापयति-ते	अदीदिपत्-त	दापयिष्यति-ते
नृत्	नर्त्तयति-ते	अनीनृतत्-त	नर्त्तयिष्यति-ते
		अननर्त्तत्-त	
मृष्	मर्षयति-ते	अमीमृषत्-त	मर्षयिष्यति-ते
		अममर्षत्-त	
चि	चाययति-ते	अचीचयत्-त	चाययिष्यति-ते
	चापयति-ते	अचीचपत्-त	चापयिष्यति-ते
धृ	धारयति-ते	अदीधरत्-त	धारयिष्यति-ते
मुच्	मोचयति-ते	अमूमुचत्-त	मोक्षयिष्यति-ते
भुज	भोजयति-ते	अबूभुजत्-त	भोजयिष्यति-ते
कृ	कारयति-ते	अचीकरत्-त	कारयिष्यति-ते
ज्ञा	ज्ञापयति-ते	अजिज्ञपत्-त	ज्ञापयिष्यति-ते
क्री	क्रापयति-ते	अचिक्रपत्-त	क्रापयिष्यति-ते
गण्	गणयति-ते	अजीगणत्-त	गणयिष्यति-ते

प्राकृते परिणामयितव्यानि

गुरुः शिष्यं भावयति । पाययति शिशुं जननी पयः । नियोजयति पुत्रं हिताय जनकः । गमयति भृत्यानापणे । श्रावयति धर्मं श्रोतृभ्यः । श्रावयते शास्त्रं पुण्याय । अध्यापयति शिष्यानाचार्यः । नर्तयन्ति गणिकां स्त्रैणाः । अमीमृषन् पाण्डवाः कौरवापराधान् । युधिष्ठिरः कृष्णस्याधिपत्ये राजसूयमचीकरत । रावणः मारीचेन सीतामजीहरत् । अतिथयेऽन्नं पाचयति । याजयन्ति यजमानं ऋत्विजः । याजयन्ते धनाय याज्ञिकाः । क्रापयते वणिग्भिः वस्तूनि । रात्रौ तस्कराः जनान् भीषयन्ते । राजाऽधमर्णेनोत्तमर्णाय ऋणं दापयिष्यति । भूस्वामिनः क्षेत्रेषु बीजानि वापयन्ते । मालाकारः वाटिकायां पुष्पाणि चाययति चापयति वा । ईश्वरः सूर्यादिना विश्वं धारयति । अचिरेणैव बन्धनात्त्वां मोक्षयिष्यामि । कारुणिको बुभुक्षितान् भोजयति । घातयति न्यायाध्यक्षः मनुष्यघातिनम् ॥

संस्कृते परिणामयितव्यानि

वह अपराधी को दण्ड दिलाता है । शङ्कर ने मण्डन को शास्त्रार्थ में हराया था । राजा अधिकारियों से प्रजा का शासन कराता है । पालन की हुई प्रजा राजा को बढ़ाती है । बढ़ी हुई लता वृक्ष को लपेटती है । माता थपकी से बच्चे को सुलाती है । वह फूँकमार कर अग्नि को जलाता है । छः महारथियों के बीच में अकेला अभिमन्यु भेजागया था । किसान बैलों से खेतों को सिंचवाते हैं । सूर्य अपनी किरणों से कमलों को खिलाता है । सेनापति अपने बुद्धिकौशल से सेना को जिताता है । आचार्य शिष्यों को सदाचार सिखाता है ॥

(२) सन्नन्तप्रक्रिया

धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होकर उक्त दश लकारों की उत्पत्ति होती है—कर्त्तुमिच्छति = चिकीर्षति ॥

सन्नन्त प्रक्रिया में परस्मैपदी धातु से परस्मैपद, आत्मनेपदी धातु से आत्मनेपद और उभयपदी से उभयपद के प्रत्यय होते हैं—बुभूषति। विवर्द्धिषते। चिकीर्षति—चिकीर्षते ॥

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	बुभूषति	अबुभूषत्	बुभूषिष्यति
पठ	पिपठिषति	अपिपठिषत्	पिपठिषिष्यति
पा	पिपासति	अपिपासत्	पिपासिष्यति
गम्	जिगमिषति	अजिगमिषत्	जिगमिषिष्यति
जि	जिगीषति	अजिगीषत्	जिगीषिष्यति
चि	चिचीषति	अचिचीषत्	चिचीषिष्यति
	चिकीषति	अचिकीषत्	चिकीषिष्यति
रुच	रुरुचिषते	अरुरुचिषत	रुरुचिषिष्यते
	रुरोचिषते	अरुरोचिषत	रुरोचिषिष्यते
हृ	जिहीर्षति-ते	अजिहीर्षत्-त	जिहीर्षिष्यति-ते
यज्	यियक्षति-ते	अयियक्षत्-त	यियक्षिष्यति-ते
पू	पुपूषते	अपुपूषत	पुपूषिष्यते
लभ्	लिप्सते	अलिप्सत	लिप्सिष्यते
वृत्	विवृत्सति	अविवृत्सत्	विवृत्स्यति
	विवर्त्तिषते	अविवर्त्तिषत	विवर्तिष्यते
अद्	जिघत्सति	अजिघत्सीत्	जिघत्सिष्यति
शी	शिशयिषते	अशिशयिषत	शिशयिषिष्यते
विद्	विविदिषति	अविविदिषत्	विविदिषिष्यति
अधीङ्	अधिजिगांसते	अध्यजिगांसिष्ट	अधिजिगांसिष्यते

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
हन्	जिघांसति	अजिघांसीत्	जिघांसिष्यति
दा	दित्सति-ते	अदित्सत्-त	दित्सिष्यति-ते
दिव्	दुद्यूषति	अदुद्यूषत्	दुद्यूसिष्यति
	दिदेविषति	अदिदेविषत्	दिदेविषिष्यति
आप्	ईप्सति	ऐप्सीत्	ईप्सिष्यति
सिच्	सिसिक्षति-ते	असिसिक्षत्-त	सिसिक्षिष्यति-ते
धृ	दिधरिषते	अदिधरिषत	दिधरिषिष्यते
भुज्	बुभुक्षति-ते	अबुभुक्षत्-त	बुभुक्षिष्यति-ते
कृ	चिकीर्षति-ते	अचिकीर्षत्-त	चिकीर्षिष्यति-ते
ग्रह्	जिघृक्षति-ते	अजिघृक्षत्-त	जिघृक्षिष्यति-ते
ज्ञप्	ज्ञीप्सति	अज्ञीप्सत्	ज्ञीप्सिष्यति

प्राकृते परिणामयितव्यानि

शब्दबोधाय व्याकरणं पिपठिषामि । क्षुधानिवृत्तयेऽन्नं जिघत्सति । कौरवा अन्यायेनाबुभूषन् । पाण्डवाः न्यायेनाऽविवर्द्धिषन्त । श्रमणाभिभूताः कृषकाः शिशयिषन्ते । जिज्ञासवो धर्मं विविदिषन्ति । ते तत्र कथं न जिगमिषिष्यन्ति? विद्यार्थिनः शास्त्राण्यधिजिगांसन्ते । नृपः शत्रून् जिगीषति । मनुष्याः हिंस्रान् जन्तून् जिघांसन्ति । गृही सर्वानाश्रमान् दिधरिषते । व्याधः मत्स्यान् जिघृक्षति । पौर्णमास्यां पक्षेष्टिना यियक्षामि । कितवाः द्यूतेन दुद्यूषन्ति दिदेविषन्ति वा । लोलुपः परार्थान् लिप्सते । पात्रेभ्यो धनं दित्सामि, दित्से वा । कृषकः क्षेत्रमसिसिक्षत् ॥

संस्कृते परिणामयितव्यानि

वह धर्म से बढ़ना चाहता है । गूँगा अपने अभिप्राय को संकेतों से जताना चाहता है । वह बाग़ में फूलों को चुनना

चाहता था। वह मधुरवचन से अपनी वाणी को पवित्र करना चाहता है। वह मुझ से पढ़ना चाहता था। मैं उसके पास जाना नहीं चाहता। वह मुझे कुछ देना चाहता था, पर मैं उससे कुछ लेना नहीं चाहता। वह उसके काम को करना नहीं चाहता॥

(३) यङन्तप्रक्रिया

हलादि वा एकाच् धातुओं से वारंवार वा बहुतायत से होने के अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय होकर उक्त दश लकारों की उत्पत्ति होती है। यथा—पुनः पुनरतिशयेन वा भवति=बोभूयते=बार बार वा बहुतायत से होता है॥

गत्यर्थक धातुओं से कुटिलता के अर्थ में ही 'यङ्' प्रत्यय होता है, बहुतायत में नहीं—कुटिलं गच्छति=जङ्गम्यते। कुटिलं क्रामति=चङ्क्रम्यते=टेढ़ा जाता है॥

किन्हीं किन्हीं धातुओं से भावनिन्दा अर्थ में भी 'यङ्' होता है—निन्दितं जपति=जञ्जप्यते=निन्दित जप करता है अर्थात् जप के व्याज से लोगों को ठगता है॥

यङन्त धातुओं से केवल आत्मनेपद ही होता है, परस्मैपद नहीं॥

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	बोभूयते	अबोभूयिष्ट	बोभूयिष्यते
पा	पेपीयते	अपेपीयिष्ट	पेपीयिष्यते
स्मृ	सास्मर्यते	असास्मर्यिष्ट	सास्मर्यिष्यते
व्रज्	वाव्रज्यते	अवाव्रजिष्ट	वाव्रजिष्यते
वृत्	वरीवृत्यते	अवरीवृतिष्ट	वरीवृतिष्यते
यज्	यायज्यते	अयायजिष्ट	यायजिष्यते

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
हन्	जेघ्नीयते	अजेघ्नीयिष्ट	जेघ्नीयिष्यते
	जङ्घन्यते	अजङ्घनिष्ट	जङ्घनिष्यते
शी	शाशय्यते	अशाशयिष्ट	शाशयिष्यते
हु	जोहूयते	अजोहूयिष्ट	जोहूयिष्यते
जन्	जाजायते	अजाजायिष्ट	जाजायिष्यते
	जञ्जन्यते	अजञ्जनिष्ट	जञ्जनिष्यते
शक्	शाशक्यते	अशाशकिष्ट	शाशकिष्यते
प्रच्छ्	पाप्रच्छ्यते	अपाप्रच्छिष्ट	पाप्रच्छिष्यते
भुज्	बोभुज्यते	अबोभुजिष्ट	बोभुजिष्यते
ग्रह्	जागृह्यते	अजाग्रहिष्ट	जाग्रहिष्यते
क्रु	चेक्रीयते	अचेक्रीयिष्ट	चेक्रीयिष्यते
सृप्	सरीसृप्यते	असरीसृपिष्ट	सरीसृपिष्यते

प्राकृते परिणमयितव्यानि

सरसि कमलं जाजायते, जञ्जन्यते वा। युधिष्ठिरः स्वर्गाय ग्रयायजिष्ट। भूतिकामः हितवचनानि सास्मर्यते। पथ्यश्वः चङ्क्रम्यते। अयस्काराः तप्तायसं बेभिद्यन्ते। होता अग्नौ हव्यं जोहूयते। वधिकः निरागसान् पशून् जेघ्नीयते, जङ्घन्यते वा। वर्षासु जलाशयाः परीपूर्यन्ते। ब्राह्मणाः श्राद्धानि बोभुज्यन्ते। बोधाय शिष्यः गुरुं पाप्रच्छ्यते॥

संस्कृते परिणमयितव्यानि

विनाश के समय यादवों ने बहुतायत से मदिरा पी थी। किसान बारबार अपने खेत को सींचता है। सांप सदा तिरछा चलता है। व्यापारी वस्तुओं को बारबार खरीदता है। दानशील सुपात्रों को बारबार देता है॥

(४) यङ्लुगन्तप्रक्रिया

यङ् प्रत्यय का लोप होजाने पर भी उसी अर्थ में दश लकार सम्बन्धी तिबादि प्रत्यय होते हैं—पुनः पुनरतिशयेन वा भवति = बोभवीति, बोभोति = बहुतायत से वा वारवार होताहै॥

इस प्रक्रिया में धातुओं से केवल परस्मैपद के प्रत्यय होते हैं॥

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	बोभवीति	अबोभवीत्	बोभविष्यति
	बोभोति	अबोभोत्	
गम्	जङ्गमीति	अजङ्गमीत्	जङ्गमिष्यति
	जङ्गन्ति		
प्रच्छ्	पाप्रच्छीति,पाप्रष्टि	अपाप्रच्छीत्	पाप्रच्छिष्यति
ग्रह्	जाग्रहीति,जाग्राढि	अजाग्रहीत्	जाग्रहिष्यति

उदाहरण इसके भी यङन्त के ही समान समझो॥

(५) नामधातुप्रक्रिया

संज्ञा वा प्रातिपदिक को (जिसका वर्णन प्रथमभाग में होचुका है) नाम कहते हैं, उससे किसी विशेष अर्थ में प्रत्यय होकर धातुवत् लकारों की उत्पत्ति जिसमें होती है, उसे नाम धातु प्रक्रिया कहते हैं । इस प्रक्रिया में अर्थ विशेष के बल से प्रातिपदिक भी तिङन्त होजाता है॥

जहां अपने लिये इच्छा कीजाय वहां संज्ञा से कर्मकारक में 'क्यच्' प्रत्यय होकर लकार सम्बन्धी तिबादि प्रत्यय उत्पन्न होते हैं । यथा—आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति = अपने लिये पुत्र चाहता है॥

उक्त अर्थ में प्रातिपदिक से 'काम्यच्' प्रत्यय भी होता है—आत्मनः धनमिच्छति = धनकाम्यति = अपने लिये धन चाहता है । यशस्काम्यति = अपने लिये यश चाहता है॥

आचार (वर्त्तने) के अर्थ में जिससे उपमा दीजावे, उपमान वाचक कर्म से भी 'क्यच्' प्रत्यय होता है—पुत्रमिवाचरति=पुत्रीयति छात्रम्=शिष्य को पुत्र के समान वर्त्तता है। पितरमिवाचरति=पित्रीयति गुरुम्=गुरु को पिता के समान आचरण करता है॥

उपमान वाचक अधिकरण से भी उक्त अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय होता है—पर्यङ्कमिवाचरति=पर्यङ्कीयति मञ्चके=टांड में पलंग के समान आचरण करता है। गृहीयति कुट्याम्=कुटी में गृह के समान वर्त्तता है॥

उपमान वाची कर्त्ता से उक्त अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है—हंस इवाचरति=हंसायते वकः=बगला हंस के समान आचरण करता है॥

भृशादि गण पठित शब्दों से अभूततद्भाव (न होकर होने के) अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है—अभृशो भृशो भवति=भृशायते=जो बहुत न था बहुत होता है। इसी प्रकार—मन्दायते। चपलायते। पण्डितायते। उत्सुकायते। उन्मनायते। इत्यादि में भी समझो॥

शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ शब्दों से करने के अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है-शब्दं करोति=शब्दायते=शब्द करता है। इसी प्रकार—वैरायते। कलहायते। अभ्रायते। इत्यादि में समझो॥

सुखादिगणपठित शब्दों से कर्तृवेदना (स्वयं अनुभव करने) के अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है—सुखं वेदयते=सुखायते=सुख का अनुभव करता है। ऐसेही—दुःखायते। तृप्तायते। कृच्छ्रायते। करुणायते। इत्यादि॥

क्यङ् प्रत्ययान्त से आत्मनेपद एवं क्यच्, क्यष् और काम्यच् प्रत्ययान्त से परस्मैपद के प्रत्यय होते हैं॥

नाम	प्रत्यय	किस अर्थ में	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
पुत्र	क्यच्	स्वेच्छा	पुत्रीयति	अपुत्रीयीत्	पुत्रीयिष्यति
राजन्	,,	,,	राजीयति	अराजीयीत्	राजीयिष्यति
वाच्	,,	,,	वाच्यति	अवाच्यीत्	वाच्यिष्यति
				अवाचीत्	वाचिष्यति
गो	,,	,,	गव्यति	अगव्यीत्	गव्यिष्यति
कर्तृ	,,	,,	कर्त्रीयति	अकर्त्रीयीत्	कर्त्रीयिष्यति
अश्व	,,	मैथुनेच्छा	अश्वस्यति	आश्वस्यीत्	अश्वस्यिष्यति
क्षीर	,,	लालसा	क्षीरस्यति	अक्षीरस्यीत्	क्षीरस्यिष्यति
अशन	,,	बुभुक्षा	अशनायति	आशनायीत्	अशनायिष्यति
उदक	,,	पिपासा	उदन्यति	औदन्यीत्	उदन्यिष्यति
धन	,,	लिप्सा	धनायति	अधनायीत्	धनायिष्यति
यशस्	काम्यच्	स्वेच्छा	यशस्काम्यति	अयशस्काम्यीत्	यशस्काम्यिष्यति
हंस	क्यङ्	आचरण	हंसायते	अहंसायिष्ट	हंसायिष्यते

नाम	प्रत्यय	किस अर्थ में	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
अप्सरस्	क्यङ्	आचरण	अप्सरायते	आप्सरायिष्ट	अप्सरायिष्यते
पयस्	,,	,,	पयायते	अपयायिष्ट	पयायिष्यते
			पयस्यते	अपयसिष्ट	पयसिष्यते
क्लीब	,,	,,	क्लीबायते	अक्लीबायिष्ट	क्लीबायिष्यते
,,	क्विप्	,,	क्लीबते	अक्लीबिष्ट	क्लीबिष्यते
राजन्	क्यङ्	,,	राजायते	अराजायिष्ट	राजायिष्यते
भृश	,,	अभूततद्भाव	भृशायते	अभृशायिष्ट	भृशायिष्यते
लोहित	क्यष्	भाव	लोहितायति	अलोहितायीत्	लोहितायिष्यति
कष्ट	क्यङ्	क्रमण	कष्टायते	अकष्टायिष्ट	कष्टायिष्यते
बाष्प	,,	उद्वमन	बाष्पायते	अबाष्पायिष्ट	बाष्पायिष्यते
शब्द	,,	करण	शब्दायते	अशब्दायिष्ट	शब्दायिष्यते
सुख	,,	कर्तृवेदन	सुखायते	असुखायिष्ट	सुखायिष्यते
नमस्	क्यच्	[illegible]	नमस्यति	अनमस्यीत्	नमस्यिष्यति

प्राकृते परिणमयितव्यानि

दशरथः पुत्रेष्ट्या अपुत्रीयीत् । यज्ञे हविः समिध्यति । उत्तरकुरुदेशे प्रजैव राजीयति । मूकः कथं न वाचिष्यति ? गोपालाः गव्यन्ति । कार्यं सदा स्वनिष्पत्तौ कर्त्रीयति । वडवा अश्वस्यति । बालः क्षीरस्यति । बुभुक्षिताः दुर्भिक्षे अशनायन्ति । ग्रीष्मे पिपासितोदन्यति । लुब्धः लिप्सया धनायति । सज्जनाः परोपकारेणैव यशस्काम्यन्ति । बहुदारकस्य दाराः परस्परं सपत्नायन्ते । सुचरित्रस्य सती पत्नी अप्सरायते । उपस्कृतं जलं पयायते, पयस्यते वा । स्त्रैणास्त्वचिरेणैव क्लीबिष्यन्ते । विदुषामभावे मूर्खा अपि पण्डितायन्ते । निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते । वर्षासु वीरुधो हरितायन्ति । पापिनः स्वकर्मभिरेव कष्टायिष्यन्ते । निदाघे सूर्य ऊष्मायते । प्रावृषि पूर्वीयो वातः मेघायते । सज्जनाः परस्य व्यसनोदये दुःखायन्ते । दयालवो दीनेषु करुणायन्ते । छात्रः गुरून् नमस्यति ॥

संस्कृते परिणमयितव्यानि

यशस्वी अपने लिये यश चाहता है । यजमान यज्ञ से स्वर्ग चाहता है । वह अपने लिये धन चाहेगा । शीत काल में धूप वस्त्र का सा आचरण करती है । वह उनके साथ हमारा सा आचरण करता है । युद्ध में वीर सिंह का सा आचरण करते हैं । परीक्षा में तीव्रबुद्धि छात्र भी मन्द होजाता है । धीर पुरुष विपत्ति में भी उदास नहीं होते । दुर्जन सज्जनों से विना कारण ही वैर करते हैं । दूसरों को उन्नत देखकर सज्जन सुख का अनुभव करते हैं ॥

(९) भावकर्मप्रक्रिया

अब तक जिस क्रिया का वर्णन हुवा, वह कर्तृवाच्य कहलाती है, इसलिये कि कर्ता उसमें प्रधान रहता है ।

यथा—देवदत्तः पठति = देवदत्त पढ़ता है। यज्ञदत्तः पाठयति = यज्ञदत्त पढ़ाता है। सोमदत्तः पिपठिषति = सोमदत्त पढ़ना चाहता है। ब्रह्मदत्तः पापठ्यते, पापठीति वा = ब्रह्मदत्त बार बार पढ़ता है। इन्द्रदत्तः पुत्रीयति = इन्द्रदत्त पुत्र चाहता है। इन सब क्रियाओं में कर्त्ता ही प्रधान है, इसलिये ये सब कर्तृवाच्य हैं, अब हम भाव और कर्मवाच्य क्रिया का वर्णन संक्षेप से करते हैं॥

धातु के अर्थ को भाव कहते हैं, जैसे होना, जाना, करना इत्यादि। भाव के एक होने से उसमें द्विवचन और बहुवचन की सम्भावना नहीं होसकती और न मध्यम और उत्तम पुरुष ही होते हैं, किन्तु सर्वत्र प्रथमपुरुष का एकवचन होता है, यथा—तेन, तैः, त्वया, युष्माभिः, मया, अस्माभिर्वा आस्यते = उस, उन, तुझ, तुम, मुझ और हमसे बैठा जाता है॥

भाववाच्य और कर्मवाच्य का लक्षण यह है कि अकर्मक धातुओं से भाववाच्य और सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य क्रिया बनाई जाती हैं। भाववाच्य—'भू' से—भूयते। 'आस्' से—आस्यते। 'शी' से—शय्यते। इत्यादि। कर्मवाच्य—'गम्' से—गम्यते। 'पठ' से—पठ्यते। 'श्रु' से—श्रूयते। इत्यादि। यह बात स्मरण रक्खो कि सकर्मक से भाव में और अकर्मक से कर्म में प्रत्यय नहीं होते॥

भाववाच्य और कर्मवाच्य क्रियाओं के रूप एक जैसे होते हैं, केवल इतना अन्तर है कि कर्मवाच्य क्रिया में कर्तृवाच्य के सदृश तीनों पुरुष और तीनों वचन होते हैं, परन्तु भाववाच्य में केवल प्रथमपुरुष का एकवचनही होता है॥

भाववाच्य क्रिया में भाव प्रधान और कर्मवाच्य में कर्म प्रधान रहता है॥

भाव और कर्म में धातु से सदा आत्मनेपद ही होता है

धातु	सकर्मक वा अक०	वर्त्तमान	भूत	भविष्य	भाव या कर्म
भू	अकर्मक	भूयते	अभावि	भविष्यते भाविष्यते	भाववाच्य
अनुभू	सकर्मक	अनुभूयते	अन्वभावि	अनुभविष्यते अनुभाविष्यते	कर्मवाच्य
पा	,,	पीयते	अपायि	पायिष्यते	,,
दा	,,	दीयते	अदायि	दायिष्यते	,,
स्था	अकर्मक	स्थीयते	अस्थायि	स्थायिष्यते	भाववाच्य
गम्	सकर्मक	गम्यते	अगामि	गमिष्यते	कर्मवाच्य
स्मृ	,,	स्मर्यते	अस्मारि	स्मरिष्यते	,,
दृश्	,,	दृश्यते	अदर्शि	द्रक्ष्यते	,,
लभ्	,,	लभ्यते	अलाभि, अलम्भि	लप्स्यते	,,
हृ	,,	ह्रियते	अहारि	हरिष्यते	,,
नी	,,	नीयते	अनायि	नयिष्यते	,,

धातु	सकर्मक वा अक०	वर्त्तमान	भूत	भविष्य	भाव या कर्म
पच्	सकर्मक	पच्यते	अपाचि	पक्ष्यते	कर्मवाच्य
यज्	"	इज्यते	अयाजि	यक्ष्यते	"
तप्	अकर्मक	तप्यते	अतप्त	तप्स्यते	भाववाच्य
रुद्	"	रुद्यते	अरोदि	रोदिष्यते	"
विद्	सकर्मक	विद्यते	अवेदि	वेत्स्यते	कर्मवाच्य
शी	अकर्मक	शय्यते	अशायि	शयिष्यते	भाववाच्य
आस्	"	आस्यते	आसि	आसिष्यते	"
अधि-इ	सकर्मक	अधीयते	अध्यैयि	अध्येष्यते	कर्मवाच्य
दुह्	"	दुह्यते	अदोहि	धोक्ष्यते	"
हु	"	हूयते	अहावि	होष्यते	"
भृ	"	भ्रियते	अभारि	भरिष्यते	"
जन्	अकर्मक	जायते, जन्यते	अजनि	जनिष्यते	भाववाच्य
मृष्	सकर्मक	मृष्यते	अमर्षि	मर्षिष्यते	कर्मवाच्य

धातु	सकर्मक वा अक०	वर्त्तमान	भूत	भविष्य	भाव या कर्म
हन्	सकर्मक	हन्यते	अघानि, अवधि	हनिष्यते	कर्मवाच्य
शक्	अकर्मक	शक्यते	अशाकि	शक्ष्यते	भाववाच्य
चि	सकर्मक	चीयते	अचायि	चयिष्यते	कर्मवाच्य
सृज्	,,	सृज्यते	असर्जि	स्रक्ष्यते	,,
मृ	अकर्मक	म्रियते	अमारि	मरिष्यते	भाववाच्य
धृ	सकर्मक	ध्रियते, धार्यते	अधारि	धरिष्यते	कर्मवाच्य
मुच्	,,	मुच्यते	अमोचि	मोक्ष्यते	,,
भिद्	,,	भिद्यते	अभेदि	भेत्स्यते	,,
कृ	,,	क्रियते	अकारि	करिष्यते	,,
ज्ञा	,,	ज्ञायते	अज्ञायि	ज्ञास्यते	,,
पू	,,	पूयते	अपावि	पविष्यते	,,
ग्रह्	,,	गृह्यते	अग्राहि	ग्रहीष्यते	,,

इनके अतिरिक्त णिजन्त, सन्नन्त और यङन्त से भी भाव और कर्म में प्रत्यय होते हैं—

णिजन्त से भाव में—भाव्यते। अभावि। भावयिष्यते।
णिजन्त से कर्म में—श्राव्यते। अश्रावि। श्रावयिष्यते।
सन्नन्त से भाव में—बुभूष्यते। अबुभूषि। बुभूषिष्यते।
सन्नन्त से कर्म में—शुश्रूष्यते। अशुश्रूषि। शुश्रूषिष्यते।
यङन्त से भाव में—बोभूय्यते। अबोभूयि। बोभूयिष्यते।
यङन्त से कर्म में—शोश्रूय्यते। अशोश्रूयि। शोश्रूयिष्यते।

भाव और कर्म में आत्मनेपद के इन ९ प्रत्ययों के सिवाय तव्य और क्त आदि और भी कई प्रत्यय होते हैं, जिनका वर्णन कृदन्त में आवेगा॥

प्राकृते परिणामयितव्यानि

अनुभूयते धर्मात्मना शश्वदानन्दः। विरज्यता पुरुषेण सर्वस्वं पात्रेभ्यो दीयते। दुरात्मभिः श्रेयसः पथि न स्थीयते। पितुरादेशाद्रामेण वनमगामि। यैर्निष्कामो धर्मः सेव्यते तैरेव विमलं यशो लभ्यते। भूतिमिच्छद्भिः शिष्यैः गुरूणां वचनान्याद्रियन्ते। पुरुषार्थमन्तरा केनाप्यर्थं नावाप्यते। वेदार्थजिज्ञासुभिः षडङ्गान्यधीयन्ते। साधुभिः खलानां दुर्वचनानि मृष्यन्ते। यैः ब्रह्मचर्यं धरिष्यते तैरेव शूरः पुत्रो जनिष्यते। कल्पादौ ब्रह्मणा सर्गः सृज्यते। क्षीणदोषाः सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते। मनुष्यस्योन्नतिः विद्ययैव सम्भाव्यते। उपदेशकेन श्रोतृभ्यो धर्मः श्राव्यते। सर्वैः सर्वावस्थासु बुभूष्यते। केनाऽपि स्वस्य प्रतिकूलानि न चिकीर्ष्यन्ते। संसारेऽस्मिन् जीवैः स्वकर्मभिर्जाजायते। भूतिकामेन गुरूणां हितवचनानि सास्मर्यन्ते॥

संस्कृते परिणामयितव्यानि

हम से वहां जाया नहीं जाता । क्या किसी से विना भूख के भी खाया जाता है । विद्या से सब कुछ जाना जाता है। खेत पानी से सींचे जाते हैं। तुमसे वहां क्यों नहीं बैठा जाता ? सज्जनों से दूसरों का दुःख हरा जाता है। आलसी से अपना बोझ भी नहीं उठाया जाता। ईश्वर से यह जगत् धारण और पालन किया जाता है। उससे वहां नहीं ठहरा गया ॥

(७) कर्मकर्तृप्रक्रिया

जिस कर्त्ता में कर्म के समान क्रिया उपलक्षित हो, वह कर्मवत् माना जाता है और ऐसी क्रिया को (जिसमें कर्त्ता कर्मवत् माना जावै) कर्मकर्तृक्रिया कहते हैं । यथा—भिद्यते काष्ठम् = काष्ठ विदीर्ण होता है। पच्यतेऽओदनः = चावल पकता है

कर्मकर्तृप्रक्रिया में प्रायः सकर्मक धातु भी अकर्मक होजाते हैं और उनसे कर्म में प्रत्यय न होकर भाव में होते हैं। यथा—पच्यते ओदनेन = चावल से पका जाता है । भिद्यते काष्ठेन = काष्ठ से विदीर्ण हुवा जाता है ॥

करण और अधिकरण में भी कहीं २ पर कर्तृव्यापार देखा जाता है । जैसे—असिश्छिनत्ति = तलवार काटती है। स्थाली पचति = बटलोई पकाती है। परन्तु इनका कर्त्ता कर्मवत् नहीं होता और इसलिये उससे भाव और कर्म में प्रत्यय भी नहीं होते ॥

कर्तृवाच्य क्रियाओं को कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने के लियेही कर्मवत् अतिदेश किया गया है। जैसे—ओदनं पचति। काष्ठं भिनत्ति । इन वाक्यों में जो ओदन और काष्ठ कर्म थे, वे ओदनः ओदनेन वा पच्यते । काष्ठं काष्ठेन वा भिद्यते । इन

वाक्यों में कर्त्ता हैं । बस कर्म का कर्तृत्वेन परिणाम होनाही इस प्रक्रिया का प्रयोजन है ॥

कर्मकर्तृवाच्य क्रियाओं के रूप वैसेही होते हैं, जैसे कि भाववाच्य और कर्मवाच्य क्रियाओं के दिखलाये जाचुके हैं, अतः उनके पृथक् लिखने की आवश्यकता नहीं ॥

(८) आत्मनेपदप्रक्रिया

क्रियाओं के दो भेद हैं, एक आत्मनेपद और दूसरा परस्मैपद । पद नाम संज्ञा और क्रिया दोनों का है । जिस क्रिया का फल अपने में आवै, वह आत्मनेपद और जिसका फल दूसरे में जावै वह परस्मैपद है । जैसे—स्वर्गाय यजते= स्वर्ग के लिये यज्ञ करता है । भोजनाय पचते=खाने के लिये पकाता है । यहां यज्ञ करना और पकाना रूप क्रिया का फल कर्त्ता के अपने लिये होने से आत्मनेपद हुवा । याजकाः यजन्ति=याजक यज्ञ करते हैं । पाचकाः पचन्ति=पाचक पकाते हैं । यहां यज्ञ करना और पकाना रूप क्रियाओं का फल कर्त्ता के लिये न होने से किन्तु यजमान और स्वामी के लिये होने से परस्मैपद हुवा । यह सामान्य नियम है, अब विशेष नियम दिखलाते हैं—

अनुदात्तेत् और ङित् धातुओं से आत्मनेपद होता है । अनुदात्तेत्—आस् = आस्ते । वस् = वस्ते ॥ इत्यादि ङित् = शीङ् = शेते । सूङ् = सूते । इत्यादि ॥

भाव और कर्म में भी धातुओं से आत्मनेपद होता है । भाव में—आस्यते त्वया । शय्यते मया ॥ कर्म में—क्रियते पटः । नीयते भारः । इत्यादि ॥

'नि' उपसर्ग पूर्वक 'विश्' धातु से आत्मनेपद होता है। निविशते ।

परि, वि और अव उपसर्ग पूर्वक 'क्री' धातु से भी आत्मनेपद होता है—परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते॥

वि और परा उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु से भी आत्मनेपद होता है—विजयते। पराजयते॥

'आ' उपसर्ग पूर्वक 'दा' धातु से मुंह न चलाने के अर्थ में आत्मनेपद होता है—विद्यामादत्ते = विद्या को ग्रहण करता है, मुंह चलाने के अर्थ में परस्मैपद होता है—मुखं व्याददाति = मुंह चलाता है॥

आ, अनु, सम् और परि उपसर्ग पूर्वक 'क्रीड' धातु से भी आत्मनेपद होता है—आक्रीडते। अनुक्रीडते। संक्रीडते। परिक्रीडते॥

सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु से भी आत्मनेपद होता है—संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते॥

'उद्' उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु से भी यदि उठना अर्थ न हो तो आत्मनेपद होता है—गेहे उत्तिष्ठते = घर में ठहरता है। उठने के अर्थ में परस्मैपद होगा—आसनादुत्तिष्ठति = आसन से उठता है॥

उद् और वि उपसर्ग पूर्वक अकर्मक 'तप' धातु से आत्मनेपद होता है—ग्रीष्मे सूर्य उत्तपते। वितपते = ग्रीष्म में सूर्य तपता है। सकर्मक से परस्मैपद होगा—उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः = सुनार सोने को तपाता है। वितपति पृष्ठं सविता = सूर्य पीठ को तपाता है *॥

'आ' उपसर्ग पूर्वक अकर्मक यम् और हन् धातु से भी आत्मनेपद होता है—आयच्छते। आहते। सकर्मक से नहीं

* उपसर्गों के योग से प्रायः अकर्मक धातु सकर्मक और सकर्मक अकर्मक होजाते हैं॥

होता—आयच्छति कूपाद्रज्जुम् = कुवे से रस्सी को खींचता है। आहन्ति वृषलं पादेन = नाच को पैर से मारता है॥

'सम्' उपसर्ग पूर्वक अकर्मक गम्, ऋच्छ्, प्रच्छ्, स्वृ, ऋ, श्रु, दृश् और विद् धातुओं से भी आत्मनेपद होता है—संगच्छते। समृच्छते। सम्पृच्छते। संस्वरते। समरते। संश्रृणुते। संपश्यते। संवित्ते॥

नि, सम्, उप और वि उपसर्ग पूर्वक 'ह्वे' धातु से आत्मनेपद होता है—निह्वयते। संह्वयते। उपह्वयते। विह्वयते। स्पर्द्धा (मुक़ाबले) के अर्थ में 'आ' उपसर्ग से भी आत्मनेपद होता है—मल्लो मल्लमाह्वयते = मल्ल मल्ल को चेलेंज देता है। स्पर्द्धा से अन्यत्र—गुरुः शिष्यमाह्वयति = गुरु शिष्य को बुलाता है॥

मारण, अवक्षेपण, सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन और उपयोग अर्थों में 'कृ' धातु से आत्मनेपद होता है। मारण—शत्रूनुत्कुरुते = शत्रुओं को निर्मूल करता है। अवक्षेपण—श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते = बाज़ बत्तक को दबाता है। सेवन—पितरमुपकुरुते = पिता की सेवा करता है। साहसिक्य—परदारान् प्रकुरुते = पराई स्त्री को रखता है। प्रतियत्न—उदकस्योपस्कुरुते = जल का संस्कार करता है। प्रकथन—निन्दां प्रकुरुते = निन्दा करता है। उपयोग—धर्मार्थं शतं प्रकुरुते = धर्मार्थ सौ रुपये लगाता है॥

विजय करने के अर्थ में 'अधि' पूर्वक 'कृ' धातु से भी आत्मनेपद होता है—शत्रुमधिकुरुते = शत्रु को वश में करता है। विजय से अन्यत्र परस्मैपद होगा—अर्थमधिकरोति = धन को अधिकार में लाता है॥

शब्दकर्मक और अकर्मक 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भी आत्मनेपद होता है। शब्दकर्मक—क्रोष्टा विकुरुते स्वरान् =

शृगाल स्वरों को बिगाड़ता है। अकर्मक—अनुत्तीर्णाश्छात्रा विकुर्वते=अनुत्तीर्ण छात्र विकार को प्राप्त होते हैं॥

सम्मानन, उत्क्षेपण, आचार्यकरण, ज्ञान, भृति, ऋणदान और व्यय इन अर्थों में 'नी' धातु से आत्मनेपद होता है। सम्मानन—शिष्यं शास्त्रे नयते=शिष्य को शास्त्र में लेजाता है। शास्त्र की प्राप्ति से शिष्य का सम्मान सूचित होता है। उत्क्षेपण—दण्डमुन्नयते=दण्ड को ऊपर फेंकता है। आचार्य-करण—माणवकमुपनयते=बालक को उपनीत करता है। ज्ञान—तत्त्वं नयते=तत्त्व का निश्चय करता है। भृति—भृत्यानुपनयते=भृत्यों को वेतन देता है। ऋणदान—करं विनयते=कर देता है। व्यय—शतं विनयते=सौ का खर्च करता है। इनसे अन्यत्र परस्मैपद होगा—अजां ग्रामं नयति=बकरी को गांव में लेजाता है॥

यदि कोई शरीर का अवयव 'नी' धातु का कर्म न हो तौ भी उससे आत्मनेपद होता है—क्रोधं विनयते=क्रोध को दूर करता है अन्यत्र—करं मुखे विनयति=हाथ को मुहं में लेजाता है॥

अप्रतिबन्ध, उत्साह और विस्तार अर्थ में 'क्रम्' धातु से आत्मनेपद होता है। अप्रतिबन्ध—शास्त्रेष्वस्य बुद्धिः क्रमते=शास्त्रों में इसकी बुद्धि चलती है अर्थात् रुकती नहीं। उत्साह—अध्ययनाय क्रमते=पढ़ने के लिये उत्साह करता है। विस्तार—क्रमतेऽस्मिन् विद्या=इसमें विद्या फैलती है। परा उपसर्ग के योग में भी उक्त धातु से आत्मनेपद होता है—पराक्रमते। 'आ' उपसर्ग के योग में भी यदि नक्षत्रभ्रमण अर्थ हो तौ आत्मनेपद होता है—आक्रमन्ते ज्योतींषि=नक्षत्र घूमते हैं। 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'क्रम्' धातु से पादविक्षेप अर्थ में (जो धातु का निज अर्थ है) आत्मनेपद होता है—सुष्ठु विक्रमतेऽश्वः=घोड़ा अच्छा क़दम चलता है। प्र और उप उपसर्गों के

योग में भी यदि आरम्भ अर्थ हो तो आत्मनेपद होता है—प्रक्रमते भोक्तुम् = खाने को आरम्भ करता है। उपक्रमते गन्तुम् = जाने को आरम्भ करता है॥

अकर्मक 'ज्ञा' धातु से भी आत्मनेपद होता है—सर्पिषो जानीते = घृत से प्रवृत्त होता है। यहां अज्ञानार्थक 'ज्ञा' धातु के होने से करण में षष्ठी हुई है। सकर्मक से परस्मैपद होता है—स्वरेण पुत्रं जानाति = आवाज़ से पुत्र को पहचानता है

मनुष्यों के स्पष्ट और सम्यक् उच्चारण अर्थ में 'वद्' धातु से आत्मनेपद होता है—संप्रवदन्ते विद्वांसः = विद्वान् संवाद करते हैं। 'अनु' पूर्वक अकर्मक 'वद्' धातु से भी उक्त अर्थ में आत्मनेपद होता है—अनुवदते कठः कलापस्य = कठ कलाप के समान स्पष्ट बोलता है। विवाद अर्थ में उक्त धातु से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं—विप्रवदन्ते, विप्रवदन्ति वा वैयाकरणाः = वैयाकरण विवाद करते हैं॥

'अव' पूर्वक 'गॄ' धातु से आत्मनेपद होता है—अवगिरते = निगलता है। प्रतिज्ञान अर्थ में 'सम्' पूर्वक 'गॄ' धातु से भी आत्मनेपद होता है—शब्दं संगिरते = शब्द को जानता है। प्रतिज्ञान से अन्यत्र—संगिरति ग्रासम् = ग्रास को निगलता है॥

'उद्' उपसर्ग पूर्वक सकर्मक 'चर्' धातु से आत्मनेपद होता है—धर्ममुच्चरते = धर्म का उल्लंघन करता है। अकर्मक से परस्मैपद होता है—बाष्पमुच्चरति = धुवां ऊपर को जाता है। तृतीया विभक्ति के योग में 'सम्' पूर्वक 'चर्' धातु से भी आत्मनेपद होता है—अश्वेन सञ्चरते = घोड़े से विचरता है॥

'सम्' पूर्वक 'दा' (यच्छ) धातु से तृतीया के योग में यदि वह तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो तो आत्मनेपद होता है। अशिष्ट (निन्दित) व्यवहार में तृतीया चतुर्थी के अर्थ में होती है—वेश्यया सम्प्रयच्छते कामुकः = कामी पुरुष वेश्या को

लिये देता है । और जहां तृतीया चतुर्थी के अर्थ में न होगी वहां परस्मैपद होगा—पाणिना संप्रयच्छति = हाथ से देता है ॥

'उप' पूर्वक 'यम्' धातु से पाणिग्रहण अर्थ में आत्मनेपद होता है—भार्यामुपयच्छते = पत्नी को प्राप्त होता है । पाणिग्रहण से अन्यत्र—गणिकामुपयच्छति = वेश्या को प्राप्त होता है ॥

सन् प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं से आत्मनेपद होता है—धर्मं जिज्ञासते = धर्म को जानना चाहता है । शास्त्रं शुश्रूषते = शास्त्र को सुनना चाहता है । पठितं सुस्मूर्षते = पढ़े हुवे को स्मरण करना चाहता है । नृपं दिदृक्षते = राजा को देखना चाहता है । परन्तु 'अनु' उपसर्ग पूर्वक सन्नन्त 'ज्ञा' धातु से तथा प्रति और आ उपसर्ग पूर्वक सन्नन्त 'श्रु' धातु से आत्मनेपद नहीं होता—मित्रमनुजिज्ञासति = मित्र को जानना चाहता है । धर्मस्य महिमानं प्रतिशुश्रूषति, आशुश्रूषति = धर्म के महिमा को सुनना चाहता है ॥

'शद्' धातु से सार्वधातुक लकारों में अर्थात् लट्, लङ्, लोट् और विधिलिङ् में आत्मनेपद होता है, आर्धधातुकों में परस्मैपद—शीयते । अशीयत । शीयताम् । शीयेत ॥

'मृ' धातु से उक्त ४ लकारों के सिवाय लुङ् और आशीर्लिङ् में भी आत्मनेपद होता है—म्रियते । अम्रियत । अमृत । म्रियताम् । म्रियेत । मृषीष्ट ॥

जो धातु आत्मनेपदी हैं, उनसे 'सन्' प्रत्यय होकर भी आत्मनेपद ही होता है—जैसे आस् और शी धातु आत्मनेपदी हैं—आस्ते । शेते । इनसे सन्नन्त में भी—आसिसिषते । शिशयिषते । आत्मनेपद ही होगा ॥

जिस धातु से 'आम्' प्रत्यय होता है, उसही के समान अनुप्रयुक्त 'कृ' धातु से भी आत्मनेपद होता है—एधाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे ॥

प्र और उप उपसर्ग पूर्वक 'युज्' धातु से यज्ञपात्रों का प्रयोग न हो तो आत्मनेपद होता है—शब्दान् प्रयुङ्क्ते = शब्दों का प्रयोग करता है। अर्थानुपयुङ्क्ते = अर्थों का उपयोग करता है। यज्ञपात्रों के प्रयोग में—यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति। परस्मैपद होगा। उद् और नि उपसर्ग के योग में भी 'युज्' धातु को आत्मनेपद ही होता है—उद्युङ्क्ते। नियुङ्क्ते॥

'सम्' पूर्वक 'क्ष्णु' धातु से भी आत्मनेपद होता है—संक्ष्णुते शस्त्रम् = शस्त्र को तीक्ष्ण करता है॥

'भुज्' धातु से भोजन अर्थ में आत्मनेपद और पालन अर्थ में परस्मैपद होता है—भोज्यं भुङ्क्ते = भोज्य को खाता है। महीं भुनक्ति = पृथिवी का पालन करता है॥

यदि कर्तृवाच्य का कर्म हेतुवाच्य का कर्त्ता होजावे तो हेतुवाच्य क्रिया से आत्मनेपद होता है—भृत्याः स्वामिनं पश्यन्ति = भृत्य स्वामी को देखते हैं। यहां भृत्य कर्त्ता और स्वामी कर्म है। स्वामी स्वात्मानं भृत्यान् दर्शयते = स्वामी अपने आप को भृत्यों को दिखलाता है। यहां स्वामी जो पूर्व वाक्य में कर्म था कर्त्ता होगया, अतएव आत्मनेपद हुवा॥

हेतुवाच्य भी और स्मि धातुओं से भी यदि हेतु से भय उपस्थित हो तो आत्मनेपद होता है—धूर्त्तो भीषयते = धूर्त्त डराता है। जटिलो विस्मापयते = जटावाला विस्मय दिलाता है। 'भी' को षुक् और 'स्मि' को पुक् का आगम होजाता है॥

गृध् और वञ्च् धातु से प्रलम्भन (प्रतारण) अर्थ में आत्मनेपद होता है—साधुं गर्धयते = साधु को ठगाता है। बालं वञ्चयते = बालक को बहकाता है॥

ण्यन्त 'कृ' धातु से यदि मिथ्या शब्द उपपद में हो तो आत्मनेपद होता है—पदं मिथ्या कारयते = पद को मिथ्या कराता है। अन्यत्र—पदं सुष्ठु कारयति = पद को शुद्ध कराता है

णिजन्त धातुओं से भी यदि क्रियाफल कर्तृगामी हो तो
त्मनेपद होता है—कार्यं कारयते=कार्य कराता है। ओदनं
चयते=चावल पकवाता है॥

इत्यात्मनेपद प्रक्रिया

—※—

(९) परस्मैपदप्रक्रिया

जिन धातुओं से जिन अवस्थाओं में आत्मनेपद कहागया है
नसे शेष धातुओं से तद्भिन्न अवस्थाओं में यदि कर्तृगामी
क्रिया फल हो तो परस्मैपद होता है—भवति। गच्छति।
पठति। पिवति। याति। अत्ति। प्रविशति। इत्यादि॥

अनु और परा उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भी परस्मैपद
होता है—अनुकरोति। पराकरोति॥

अभि, प्रति और अति उपसर्ग पूर्वक क्षिप् धातु से भी
परस्मैपद होता है—अभिक्षिपति। प्रतिक्षिपति। अतिक्षिपति।
इनसे अन्यत्र—आक्षिपते॥

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'वह्' धातु से भी परस्मैपद होता है—
प्रवहति। अन्यत्र—आवहते॥

'परि' उपसर्ग पूर्वक मृष् धातु से भी परस्मैपद होता है—
परिमृष्यति। अन्यत्र—आमृष्यते॥

वि, आ, परि और उप उपसर्ग पूर्वक 'रम्' धातु से भी
परस्मैपद होता है—विरमति। आरमति। परिरमति। उपर-
मति। इनसे अन्यत्र—अभिरमते। परन्तु 'उप' उपसर्ग पूर्वक
अकर्मक 'रम्' धातु से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं—
भोजनादुपरमति, उपरमते वा=भोजन से निवृत्त होता है॥

णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन्, इ, प्रु, द्रु, और स्रु धातुओं से
कर्तृगामी क्रियाफल में परस्मैपद होता है—बोधयति।

योधयति । नाशयति । जनयति । अध्यापयति । प्रावयति । द्रावयति । स्रावयति ॥

भोजनार्थक और कम्पनार्थक णिजन्त धातुओं से भी परस्मैपद होता है । भोजनार्थक—आशयति । खादयति । आदयति । भोजयति । निगारयति ॥ कम्पनार्थक—कम्पयति । वेपयति । धूनयति । चलयति ॥

अकर्मक धातुओं से ण्यन्तावस्था में यदि चित्तवान् कर्त्ता हो तो परस्मैपद होता है—आसयति गुरुम् = गुरु को बिठलाता है । शाययति शिशुम् = बालक को सुलाता है । जहां चित्तवान् कर्त्ता न हो वहां आत्मनेपद होगा—शोषयते व्रीहीनातपः = धूप धानों को सुखाती है ॥

णिजन्त पा, दम्, आयम्, आयस्, परिमुह्, रुच्, नृत्, वद् और वस् धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल में परस्मैपद नहीं होता किन्तु आत्मनेपद होता है—पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्त्तयते । वादयते । वासयते । परन्तु कर्मगामी क्रियाफल में इनसे परस्मैपद होता है—पाययति शिशुं पयः = बच्चे को दूध पिलाता है ॥

क्यप् प्रत्ययान्त धातुओं से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं—लोहितायति । लोहितायते ॥

द्युतादि गणपठित धातुओं से लुङ् लकार में परस्मैपद और आत्मनेपद होते हैं—अद्युतत् । अद्योतिष्ट । अवृतत् अवर्त्तिष्ट । अवृधत् । अवर्धिष्ट ॥

वृत्, वृध्, शृध्, और स्यन्द् धातुओं से लृट्, लृङ् और सन् प्रत्यय में भी उक्त दोनों होते हैं—वर्त्स्यति । वर्त्तिष्यते । अवर्त्स्यत् । अवर्त्तिष्यत । विवृत्सति । विवर्त्तिषते । इसी प्रकार वृध् आदि में भी समझो ॥

क्लृप् धातु से उक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त लुट् लकार में

भी परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं—कल्प्तासि । कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत । चिक्लृप्सति । चिकल्पिषते ॥

इति परस्मैपदप्रक्रिया

---

(१०) लकारार्थप्रक्रिया

किन्हीं विशेष दशाओं में लकारों के अर्थ और काल में जो परिवर्त्तन होता है, उसका संक्षेप से वर्णन इस प्रक्रिया में किया जावेगा ॥

सामान्य भविष्य अर्थ में लृट् लकार कहा गया है, परन्तु जब कोई स्मरणार्थक पद क्रिया के समीप में हो तो अनद्यतन भूत में भी लृट् हो जाता है—स्मरसि मित्र ! आग्रे वत्स्यामः = हे मित्र ! तुमको स्मरण है हम आगरे में बसे थे । उक्त वाक्य में यदि 'यद्' सर्वनाम और मिला दिया जावे तो 'लृट्' न होगा किन्तु 'लङ्' ही रहेगा—जानासि मित्र ! यदिन्द्रप्रस्थेऽवसाम = जानते हो मित्र ! कि जो हम दिल्ली में बसे थे ॥

परोक्ष भूत में केवल लिट् लकार कहा गया है, परन्तु यदि ह और शश्वत् अव्ययों का योग हो तो इस अर्थ में लङ् भी होता है—इति ह चकार । इति हाकरोत् = ऐसा किया था । शश्वच्चकार । शश्वदकरोत् = बार २ किया था ॥

समीप काल में जो प्रश्न किया गया हो तो भी उक्तार्थ में लिट् और लङ् दोनों होते हैं—किंस जगाम ? किं सोऽगच्छत् = क्या वह गया ? यदि प्रश्न समीप काल का न हो तो केवल लिट् ही होगा—किं भीमः जरासन्धं जघान ? = क्या भीम ने जरासन्ध को मारा था ॥

'स्म' अव्यय का योग होने पर परोक्षभूत में लट् होता है—यजति स्म युधिष्ठिरः = युधिष्ठिर ने यज्ञ किया था ॥

अपरोक्ष अनद्यतन भूत में भी 'स्म' का योग होने पर लट् होता है—एवं ब्रवीतिस्मोऽध्याय: = उपाध्याय ने ऐसा कहा था ॥

'ननु' अव्यय का योग हो तो प्रश्न के उत्तर में भूतार्थ में लट् होता है—किमपठीस्त्वम् ? ननु पठामि भोः ! = क्या तैंने पढ़ा था ? हां मैंने पढ़ा था ॥

'पुरा' अव्यय का योग हो तो परोक्षभूत में लट्, लिट्, लङ् और लुङ् चारों लकार होते हैं—वसन्तीह पुरा छात्राः। ऊषुरिह पुरा छात्राः। अवसन्निह पुरा छात्राः। अवात्सुरिह पुरा छात्राः = यहां पहिले छात्र बसते थे ॥

यावत् और पुरा अव्ययों के योग में भविष्यदर्थ में लट् लकार होता है—यावद्भुङ्क्ते = जबतक खायगा। पुरा भुङ्क्ते = पहिले खायगा ॥

कदा और कर्हि अव्ययों के योग में भविष्यार्थ में लट्, लुट् और लृट् तीनों लकार होते हैं—कदा, कर्हि वा भुङ्क्ते, भोक्ता, भोक्ष्यते वा = कब खावेगा ॥

लिप्सासूचक 'किम्' सर्वनाम का योग हो तो भी भविष्यदर्थ में लट्, लुट् और लृट् तीनों लकार होते हैं—कं भोजयामि, भोजयितासि, भोजयिष्यामि ? = किस को खिलावेगा?

जहां लिप्स्यमान (इच्छुक) से सिद्धि की आशा हो वहां भी उक्तार्थ में तीनों लकार होते हैं—यः दीनेभ्योऽन्नं ददाति, दाता, दास्यति वा स सुखं लभते, लब्धा, लप्स्यते वा = जो दीनों को अन्न देगा वह सुख पावेगा ॥

लोट् लकार के अर्थ में वर्त्तमान धातु से भविष्यत् काल में उक्त तीनों लकार होते हैं—उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगन्ता, आगमिष्यति वा तर्हि त्वं व्याकरण मधीष्व = यदि उपाध्याय आवै तो तू व्याकरण पढ़ ॥

यदि वर्त्तमान के समीप में भूत और भविष्य की क्रिया हो तो उनसे भी एक पक्ष में वर्त्तमान के सदृश लट् लकार हो जाता है । भूत में वर्त्तमान— कदाऽऽगतोऽसि = तू कब आया ? अयमागच्छाम्यागमं वा = यह आया हूं । यहां आगमन क्रिया यद्यपि भूतकाल की है, तथापि वर्त्तमान के समीप होने से लट् का भी प्रयोग होगया । भविष्यत् में वर्त्तमान— कदा गमिष्यसि ? = कब जायगा ? एष गच्छामि, गन्ता, गमिष्यामि वा = यह जाता हूँ । यहां गमन क्रिया भविष्य काल की है ॥

आशंसा (अप्राप्त प्रिय वस्तु की आशा) में भविष्य काल की क्रिया से भूत और वर्त्तमान के सदृश भी प्रत्यय होते हैं— वृष्टिश्चेदभूत्, भवति, भविष्यति वा प्रभूतान्यन्नान्यलप्स्महि, लभामहे, लप्स्यामहे वा = वृष्टि होगी तो बहुत से अन्नों को पावेंगे

क्षिप्र और उसके पर्याय वाचक शब्दों का योग हो तो भविष्य काल में केवल लट् लकार ही होता है—वृष्टिश्चेत्क्षिप्रं भविष्यति बीजानि शीघ्रं वप्स्यामः = यदि वृष्टि शीघ्र होगी तो बीज जल्दी बोवेंगे ॥

यदि किसी कार्य की सम्भावना हो तो भविष्य काल में लिङ् लकार होता है—उपाध्यायश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय = यदि उपाध्याय आवेगा तो सम्भावना करताहूँ कि पढूंगा ॥

समानार्थक उत और अपि अव्ययों के योग में भविष्य में लिङ् लकार होता है—उताधीयीत । अप्यधीयीत = सम्भव है कि पढ़ेगा । सम्भावन में ये दोनों समानार्थक होते हैं ॥

अभिलाष के प्रकट करने में यदि कच्चित् शब्द का प्रयोग न हो तो भी धातु से लिङ् होता है—कामो मे भुञ्जीत भवान् = मेरी इच्छा है कि आप भोजन करें । कच्चित् के प्रयोग में लट् होगा—कच्चित् ते भुञ्जते = क्या वे खाते हैं ॥

असम्भावित अर्थ के प्रकाश करने में भी लिङ् लकार होता है—अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात् = पर्वत को शिर से तोड़ेगा।

सम्भावित अर्थ के प्रकाश करने में लिङ् और लृट् दोनों होते हैं—अपि सिंहं शस्त्रेण हन्यात्, हनिष्यति वा = सिंह को शस्त्र से मारेगा॥

हेतु और हेतुमान् (कारण और कार्य) की विवक्षा में लिङ् और लृङ् दोनों लकार होते हैं—धर्मं कुर्याच्चेत्सुखं यायात्। धर्ममकरिष्यच्चेत्सुखमयास्यत् = धर्म करेगा तो सुख पावेगा।

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थन इन ६ अर्थों में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं। विधि—स तत्र गच्छेत्, गच्छतु वा = वह वहां जावे। निमन्त्रण—इह भवान् भुञ्जीत भुङ्क्तां वा = आप यहां भोजन करें। आमन्त्रण—इह भवानासीत, आस्तां वा = आप यहां बैठें। अधीष्ट—माणवकमध्यापयेयुः, अध्यापयन्तु वा = बालक को पढ़ाओ। संप्रश्न—किमहं व्याकरणमधीयीय, अध्ययै वा = क्या मैं व्याकरण पढ़ूं? प्रार्थन—मह्यं भोजनं दद्याः, देहि वा = मेरे लिये भोजन दो॥

आशीर्वाद अर्थ में धातु से आशीर्लिङ् और लोट् लकार होते हैं—स्वस्ति ते भूयात्। स्वस्ति ते भवतात् = तेरे लिये सुख हो॥

'मा' अव्यय के योग में धातु से लुङ् लकार होता है—मा कार्षीः = मत कर। यदि 'मा' से आगे 'स्म' अव्यय भी हो तो लङ् भी होता है—मास्मकरोः। मास्म कार्षीः = मत कर*

इति लकारार्थप्रक्रिया

समाप्तश्चायं तृतीयो भागः॥

---

* 'मा' के योग में 'अट्' का आगम नहीं होता॥

शुद्ध शिलाजीत

पर्वत का शिलाजीत प्रसिद्ध है, परन्तु बहुत से प्रतारक ठों को असली कहकर बेच देते हैं। सस्ता मिलने के ण प्रायः लोग उनकी वञ्चना में आजाते हैं। हमारे ाजीत की उत्तमता का इससे अधिक और क्या प्रमाण कता है कि इसको एकवार भी जिन्होंने सेवन किया वे ा के लिये इसके चमत्कारिक गुणों पर मोहित होगये। कारण है कि भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में इसका ा अधिक प्रचार हुवा है कि जिसके लिये हमको एक ालय स्थापन करने की आवश्यकता हुई। सब प्रकार के ह, धातुदौर्बल्य, मन्दाग्नि और अर्श आदि रोगों के लिये अमोघ औषध है। उक्त रोगों से सताये हुवे पुरुष कुछ इसका सेवन करें, ईश्वर ने चाहा तो फिर उनको किसी र औषधि की आवश्यकता न रहेगी। स्वस्थ पुरुष भी नको कोई रोग न हो) यदि इसका सेवन करेंगे तो उनका ाशय इतना बलिष्ठ होजायगा कि जो खायेंगे उसको पचा । भूख खुलकर लगेगी, शरीर में बल और मन में ाह बढ़ेगा और कोई रोग सहसा उन पर आक्रमण रसकेगा। स्वास्थ्य के अभिलाषुकों को एकवार इसकी क्षा अवश्य करनी चाहिये। दाम फ़ी तोला २)

हमारे यहां से अन्य सब प्रकार की औषधियां भी मिलती हैं. सूची मँगाकर देखें।

मिलने का पता :—

पं० अम्बिकादत्त पन्त

हिमालयन् औषधालय रानीखेत

(कमायूँ)

उपनिषदों का सरल भाषानुवाद

संस्कृत के प्राचीन साहित्य में उपनिषदों का जै
और गौरव है, वह किसी से छिपा नहीं है। अपनी
तो सभी आदर करते हैं, किन्तु इनकी पवित्र शिक्षा
अन्य धर्मावलम्बी और विदेशीय लोगों ने भी अप
झुकाया है। राजपुत्र दाराशिकोह का व्याकुल आत
अमृतरस को पान करके शान्त हुवा था। जर्मनी के फि
शोपिनहार इन्हीं की प्रशंसा में लिखगये हैं कि "मेरे जी
अनन्य सुख का कारण यही उपनिषद् विद्या है
विश्वास रखता हूँ कि मरने के पश्चात् भी मेरे आत्मा
और शान्ति इन्हीं से मिलेगी" यद्यपि उपनिषदों के
भाषा में भी कई अनुवाद होचुके हैं, तथापि कि
अनुवाद की (जो सरल और संक्षिप्त रीति पर मूल के अ
व्यक्त करता हो, तथा भाषा उसकी जटिल और दुबो
और मूल्य भी स्वल्प हो) बड़ी भारी आवश्यकता थी
अनुवाद इन सब गुणों से अलंकृत है। मूल्य-
केन -)॥ कठ ।) प्रश्न ।) मुण्डक ≡) माण्डूक्य =)॥

अबला सन्ताप

कोई देश वा समाज सौभाग्यशाली नहीं होसकत
तक उसकी स्त्रियों की दशा सन्तोषजनक न हो। स्त्री ज
उद्धार जिन उपायों पर अवलम्बित है और उन
पुरुषों का जो देश, काल और धर्मानुसार कर्त्तव्य
उसी का निर्देशन उत्तम रीति से इस पुस्तक में किया
स्त्री पुरुष दोनों के लिये यह पुस्तक उपयोगी है। मूल

इकट्ठा लेने वालों को कमीशन भी मिलता है।

मिलने का पता:—

पं० बद्रीदत्त श

आर्यसमाज ठंडीसड़क